श्यामनारायण पाण्डेय

भारतीय साहित्य के निर्माता

श्यामनारायण पाण्डेय

कृष्णचन्द्र लाल

साहित्य अकादेमी

अनुक्रम

भूमिका

पं. श्यामनारायण पाण्डेय का काव्य भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता-संघर्ष की उपज है। उन्होंने उस समय काव्य-रचना के क्षेत्र में पदार्पण किया, जब हिन्दी में छायावादी कविता का तीव्र प्रवाह हो चुका था, किन्तु उन्होंने अपने को छायावादी काव्यचेतना से जोड़ने की बजाय द्विवेदीयुगीन कविता की इतिवृत्तात्मकता और उसकी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से घनिष्ठ रूप से जोड़ा। उस समय भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष महात्मा गाँधी के नेतृत्व में काफ़ी तीव्र हो गया था। लोग आज़ादी के लिए विकल हो उठे थे। मातृभूमि की मुक्ति के लिए स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर आत्मोत्सर्ग हेतु व्याकुल जनता में स्वाभिमान, शौर्य और उत्साह का भाव जगाने के लिए श्यामनारायण पाण्डेय ने वीररसप्रधान राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-रचना का प्रेरणादायी मार्ग चुना। इस सन्दर्भ में उनका यह आत्मवक्तव्य उद्धरणीय है—"वह ज़माना था स्वतन्त्रता-संग्राम का। देश पराधीन था। आज़ादी की लहर चारों ओर थी, एक ही तराना मन को भाता था। वह था वीररस। छायावादी कविताओं का ज़ोर चल रहा था, पर उस समय देश युद्ध के मैदान में कूद चुका था। जब रणभेरी बज रही हो, तब कोयल की कूक और सरिताओं का कल-कल निनाद या प्रेयसी की विरह-व्यथा कानों को अच्छी नहीं लगती। तलवारों की छप-छप और घोड़ों की टाप ही उस समय मन को खींचती है, मेरे साथ यही हुआ।"

श्यामनारायण पाण्डेय ने अपनी कविताओं से भारतीय जनता को मनुष्य की अपरिमित शक्ति से परिचित कराया। *जौहर* की भूमिका में उन्होंने लिखा है—"मानव तूफ़ान है, जिसके उठने पर समग्र सृष्टि हिल जाती है। मानव भूडोल है, जिसके डोलने से सारी पृथ्वी काँप उठती है और मानव वज्र है, जिसकी कठोर ध्वनि से आकाश का कोण-कोण दहल उठता है।" *हल्दीघाटी*, *जौहर* और *शिवाजी* जैसी कृतियों से उन्होंने अपनी इस धारणा को सोदाहरण पुष्ट किया। *हल्दीघाटी* के राणाप्रताप, *जौहर* के रतनसिंह और गोरा बादल तथा *शिवाजी* के वीर शिवाजी भारतीय इतिहास के वे वीर हैं, जिन्होंने अपने बल, पौरुष और पराक्रम से 'वीरभोग्या वसुन्धरा' की उक्ति को चरितार्थ किया है। इतिहास के इन वीरों की शौर्य-गाथाओं और देश-धर्म-जाति एवं संस्कृति की सुरक्षा और मुक्ति के लिए किये गये उनके

वीरतापूर्ण उत्सर्गों का ओजस्वी वर्णन करके श्यामनारायण पाण्डेय ने मुक्ति के लिए संघर्षरत पराधीन जनता के युद्धोत्साह को तो तीव्र किया ही, कवि के रूप में अपने राष्ट्रीय दायित्व का भी सफल निर्वाह किया। यह सही है कि कवि को देश-काल की सीमा में बाँधकर उसकी सृजनात्मकता को सीमित-संकुचित नहीं किया जा सकता, किन्तु वह जिस देश-काल में रहता है, उसकी समस्याओं और परेशानियों का सामना करते हुए उनके समाधान या निराकरण का मार्ग तलाशना या उसे इंगित करना उसका धर्म है। यह उसकी अतिरिक्त संवेदनशीलता की भी माँग है और उसके युग-धर्म का ज़रूरी हिस्सा भी है, यह दूसरी बात है कि ऐसा करते समय वह अपनी कलात्मकता और सृजनात्मकता की क्षति न होने दे। श्यामनारायण पाण्डेय ने अपनी समूची काव्य-प्रतिभा को युग-धर्म के निर्वाह में ही लगा दिया, इसके लिए उन्होंने न तो कलात्मकता की अधिक परवाह की और न ही प्रवाह-मार्ग का अनुसरण किया।

श्यामनारायण पाण्डेय हिन्दी की उस राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के महत्त्वपूर्ण कवि हैं, जो नवजागरण काल में भारतेन्दु द्वारा प्रवर्तित और मैथिलीशरण गुप्त, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह 'दिनकर' और सोहनलाल द्विवेदी की कविताओं से परिपुष्ट हुई। जैसे इन कवियों में परस्पर साम्य के साथ-साथ कुछ भिन्नता और नवीनता है, वैसे ही श्यामनारायण पाण्डेय का स्वर इन सबसे कुछ मेल खाते हुए भी भिन्न और नया है। अतीत का गौरवगान, राष्ट्रीय स्वाभिमान, देशोद्धार का संकल्प, मातृभूमि की रक्षा के लिए त्याग और बलिदान की भावना, भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग आदि बातें तो इन सबमें समान हैं, किन्तु 'आर्य-धर्म', 'आर्य-संस्कृति', 'हिन्दू-धर्म' और 'हिन्दू जाति' में जो एकान्त निष्ठा श्यामनारायण पाण्डेय में है, वह उन्हें अन्य कवियों से थोड़ा अलग कर देती है। कुछ कवियों पर गाँधीवाद का भी प्रभाव है, किन्तु श्यामनारायण पाण्डेय राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी वीरों और शहीदों से अधिक प्रभावित हैं और उनकी विचारधारा हिन्दू महासभा के विचारों से अधिक मेल खाती है। इतना अवश्य है कि *शिवाजी* महाकाव्य में उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता और समानता की बात की है, किन्तु उनकी एकान्त आस्था हिन्दू-धर्म, हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-जाति में ही है, फिर भी उनकी यह हिन्दू-चेतना राष्ट्रीय भावना का ही अभिन्न अंग है। श्यामनारायण पाण्डेय ने भारतीय जनता में राष्ट्रीयता के प्रसार के लिए मध्यकालीन इतिहास के उन गौरवशाली पृष्ठों को चित्रित किया है, जिन पर हिन्दू शासकों और मुग़ल बादशाहों के लोमहर्षक युद्ध अंकित हैं, किन्तु याद रखना चाहिए कि वे युद्ध हिन्दू-मुसलमान के बीच के युद्ध नहीं थे। वास्तविकता यह है कि हिन्दू राजाओं ने मुग़ल बादशाहों के अत्याचार, अनाचार और नृशंसतापूर्ण दमन के विरुद्ध अपने देश के स्वाभिमान, स्वातन्त्र्य और कुल-गौरव के

लिए युद्ध किया था। श्यामनारायण पाण्डेय ने उनके वीरतापूर्ण संघर्ष का चित्रण करके भारतीय जनता में स्वदेश, स्वधर्म, स्वजाति और स्वसंस्कृति की रक्षा का पाठ पढ़ाया और इस सबके लिए बड़ी से बड़ी क़ुर्बानी देने का हौसला पैदा किया। अंग्रेज़ों के दमनचक्र में पिसती हुई भारतीय जनता को मुक्ति के लिए उसके अतीत की ये गौरव-गाथाएँ स्वाभाविक रूप से प्रेरणादायी सिद्ध हुईं और वह अंग्रेज़ी शासन को उसी तरह उखाड़ फेंकने के लिए सन्नद्ध हुई, जिस तरह राणा प्रताप अकबर के और शिवाजी औरंगज़ेब के आधिपत्य को समाप्त करने के लिए कटिबद्ध हुए थे। मध्यकालीन इतिहास के उस दौर में हिन्दू चेतना ही राष्ट्रीय चेतना या राष्ट्रीयता का मूलाधार थी। श्यामनारायण पाण्डेय ने अपनी राष्ट्रीय चेतना को उसी तक सीमित कर दिया है। हालाँकि उनकी कुछ कविताओं में 'सर्वधर्म समभाव', 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'विश्व-बन्धुत्व' का भी भाव देखने को मिलता है, किन्तु वह उनका मूल स्वभाव नहीं है। जो भी हो, अपनी सीमित राष्ट्रीयता के बावजूद उनका काव्य राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

जिस तरह स्वाधीनता-संघर्ष के दौरान श्यामनारायण पाण्डेय ने देशोद्धार के लिए भारतीय जनता को शौर्यपूर्ण आत्मबलिदान और दुर्धर्ष संघर्ष का रास्ता सुझाया, उसी तरह स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देश के चारित्रिक उत्थान और राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण के लिए *बालिवध, वशिष्ठ, जय हनुमान* और *परशुराम* जैसे काव्यों की रचना की और जनता के सामने तप, त्याग, सदाचार-निष्ठा, बन्धुत्व, सेवा, करुणा और आध्यात्मिकता का पाठ पढ़ाया। वे स्वातन्त्र्योत्तर कालीन भारत की चारित्रिक एवं सांस्कृतिक गिरावट से बहुत क्षुब्ध थे। आधुनिकता की आँधी में बहते हुए नवयुवकों और नवयुवतियों की दशा से भी वे बहुत खिन्न थे। उन्होंने अपने पौराणिक काव्यों से उनके सामने सच्चरित्रता और उच्च जीवन-मूल्यों का सन्देश देनेवाले ऋषियों, महापुरुषों और कर्त्तव्यपरायण नारियों के उदात्त चरित्र को प्रस्तुत किया। कहने का तात्पर्य यह है कि श्यामनारायण पाण्डेय ने भले ही जीवनभर ऐतिहासिक-पौराणिक काव्यों की रचना की हो, भले ही भारत की प्राचीन संस्कृति के ही आदर्शों और मूल्यों का गुणगान किया हो, किन्तु उनकी कविता का उद्देश्य महान था। वे पराधीन भारत के स्वातन्त्र्य-संग्राम के वीर सेनानी और आज़ाद भारत के नवनिर्माण की परिकल्पना प्रस्तुत करनेवाले सजग कवि थे। उनका काव्य प्रेरणादायी और सन्देश-प्रधान है। उसमें वर्णनात्मकता और इतिवृत्तात्मकता ज़रूर है, किन्तु वीररस और राष्ट्रीय भावना का ऐसा प्रबल प्रवाह है कि उसे पढ़ने-सुननेवाले की पस्ती-सुस्ती क्षण भर में दूर हो सकती है और उसकी भुजाएँ अपने दुश्मन को ललकारने के लिए तत्काल फड़क सकती हैं। जो कवि अपने सहज-सरल शब्दों से वीरता का जोश पैदा कर दे, देश-हित के लिए उत्सर्ग का पाठ पढ़ा दे, राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण के लिए उदात्त मूल्यों के प्रति आकर्षण पैदा कर दे और अपनी सांस्कृतिक

विरासत को सँजोने के लिए गहरी निष्ठा जगा दे, वह अपनी कुछ सीमाओं के बावजूद महान और प्रशंसनीय है। इस देश में जब भी अनीति, अत्याचार, नृशंसता और कुशासन का बोलबाला होगा, श्यामनारायण पाण्डेय के काव्य-ग्रन्थ उसका विरोध करने के लिए लोगों में राष्ट्रीयता, सच्चरित्रता और वीरता का भाव भरते रहेंगे। वे निःसन्देह आधुनिक काल के विशिष्ट और अविस्मरणीय कवि हैं।

1

समय और चेतना

साहित्यकार अपने देश और काल की परिस्थितियों और प्रवृत्तियों से तो प्रभावित-प्रेरित होता ही है, उन्हें वह भी प्रभावित और प्रेरित करता है। यह प्रक्रिया एकतरफ़ा नहीं होती है। जिन साहित्यकारों में यह स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई देती, उनमें भी वह विद्यमान होती है, उसको जानने के लिए पाठक और आलोचक में सूक्ष्म अन्वीक्षणशक्ति का होना आवश्यक है। कहना चाहिए कि जो जितना ही बड़ा साहित्यकार होता है, उसके साहित्य में उसका देश-काल उतनी ही सूक्ष्मता और गहराई के साथ विद्यमान रहता है। श्यामनारायण पाण्डेय सूक्ष्म कला के साहित्यकार नहीं हैं। वर्णनात्मकता उनकी काव्य-कला का मुख्य स्वभाव है। उनकी रचनाओं में उनके देश-काल को समझना आसान है; साथ ही, यह जानना भी सुगम है कि उन्होंने किस प्रकार की परिस्थितियों के बीच काव्य-रचना की है और उनके काव्य का मुख्य उद्देश्य क्या है।

श्यामनारायण पाण्डेय ने लगभग नौ-दस वर्ष की अवस्था से ही काव्याभ्यास शुरू कर दिया था, किन्तु उनकी पहली रचना तुमुल सन् 1928 में प्रकाशित हुई। उनकी अन्तिम रचना परशुराम का प्रकाशन 1985 ई. में हुआ और उनका देहान्त 1989 ई. में हुआ। इसके आधार पर मोटे तौर पर यह माना जा सकता है कि सन् 1925 से सन् 1985 तक वे अनवरत साहित्य-सृजन करते रहे। स्पष्ट है कि श्यामनारायण पाण्डेय की साहित्य-साधना की साठ वर्षों की यह अवधि स्वयमेव उल्लेखनीय तो है ही, देश-काल की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। देश-काल की परिस्थितियों की दृष्टि से यह अवधि दो हिस्सों में आसानी से बाँटी जा सकती है—

1. स्वातन्त्र्य-पूर्व की परिस्थिति, 2. स्वातन्त्र्योत्तर काल की परिस्थिति। कहना न होगा कि देश की ये दोनों स्थितियाँ एक दूसरे से काफ़ी भिन्न हैं। पहली परिस्थिति पराधीनता का वह कालखण्ड है, जिसमें भारतीय जनता ने स्वाधीनता के लिए तीव्र संघर्ष छेड़ रखा था और दूसरी परिस्थिति वह है, जिसमें स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देश अपने संविधान के अनुसार नव-निर्माण और विकास की ओर अग्रसर हुआ था। श्यामनारायण पाण्डेय की रचनात्मकता का घनिष्ठ सम्बन्ध इन दोनों अवस्थाओं से रहा है। उनके साहित्य पर न केवल उस समय की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा है,

बल्कि उन्होंने देश की जनता को उसके संघर्षकाल में उसे अपेक्षित शक्ति एवं चेतना से संबलित करके अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ते रहने का उत्साह भी प्रदान किया है। श्यामनारायण पाण्डेय एकान्त में बैठकर गीत-संगीत का आलाप करनेवाले कवि नहीं हैं। वे अग्निधर्मी कवि हैं। यदि कोई शत्रु बनकर उन्हें कष्ट देता है तो वे उसे जलाकर राख कर देने का हौसला और साहस रखते हैं। उन्होंने ख़ुद कहा है कि मैं 'वीर रस' का 'अन्धड़ कवि' हूँ। वे दुश्मन पर तूफ़ान और बवण्डर की तरह टूट पड़नेवाले अपरिमित ओज और जोश से भरे ऐसे कवि हैं, जो रणक्षेत्र में राणा प्रताप या रावल रतनसिंह की तरह पीठ दिखाने की अपेक्षा उत्सर्ग हो जाने को श्रेयस्कर समझते हैं। वे अपने देश, जाति, धर्म और संस्कृति की रक्षा और उसके उत्थान के लिए सर्वस्व का बलिदान कर देने का पाठ पढ़ानेवाले ऐसे निडर कवि हैं, जो स्वाभिमान और स्वतन्त्रता के समक्ष जीवन को भी तुच्छ समझता है। वे राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के विशिष्ट कवि हैं। उनकी यह चेतना तत्कालीन परिस्थितियों के घात-प्रतिघात के बीच निर्मित हुई है।

जिस समय पाण्डेय जी ने काव्य-रचना आरम्भ की, उस समय भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष महात्मा गाँधी के नेतृत्व में पूरी व्यापकता के साथ अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो चुका था। देश की जनता आजादी के लिए महात्मा गाँधी के नेतृत्व में इस तरह संगठित हो गयी थी कि वह उनके आदेशों-निर्देशों का पालन अपने परम कर्त्तव्यों के रूप में करती थी। *दिनकर* ने लिखा है कि गाँधी के दो पैर जिधर चलते थे, उधर करोड़ों पैर चलने लगते थे और जिधर उनके दो हाथ उठते थे, उधर करोड़ों हाथ उठ जाते थे। भारतीय जनता आज़ादी के लिए दीवानी हो गयी थी। काँग्रेस के नेतृत्व में पूरा देश स्वतन्त्रता-संग्राम में कूद पड़ा था। इस बीच अंग्रेज़ शासकों ने राष्ट्रीय आन्दोलन को विफल करने के लिए तरह-तरह के हथकण्डे भी अपनाए। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को अलग-थलग करने के लिए यह प्रचार भी किया कि बहुसंख्यक हिन्दुओं के शासन में मुसलमानों के हितों की न केवल उपेक्षा की जाएगी, बल्कि उन्हें दण्डित और पीड़ित भी किया जाएगा। इन विचारों के आलोक में मुसलमानों ने अपने हितों की रक्षा के लिए 'मुस्लिम लीग' बनायी। उसके जवाब में हिन्दुओं ने 'हिन्दू महासभा' का गठन किया, जिसके अध्यक्ष बने लाला लाजपत राय। 1925 में मुस्लिम लीग के कलकत्ता अधिवेशन में लीग के अध्यक्ष अब्दुर्रहीम ने यह ऐलान किया कि हिन्दुओं की आक्रामक नीति की वजह से मुसलमानों के लिए मुस्लिम लीग की ज़रूरत अब सबसे ज़्यादा है। उन्होंनें यह भी बताया कि हिन्दू मुसलमानों के सबसे बड़े दुश्मन हैं और मुसलमानों से अपील की कि वे अपनी हिफ़ाज़त के लिए हर तरह के क़दम उठाएँ। उन्होंने ज़ोर देकर यह भी कहा कि मुसलमानों को हिन्दुओं के साथ आम निर्वाचन क्षेत्र के लिए कभी राजी न होना चाहिए। दूसरी तरफ़ 'हिन्दू महासभा' ने भी 1925 ई. में अपने

कलकत्ता अधिवेशन में महासभा का यह लक्ष्य बताया—हिन्दुओं को संघबद्ध करना, जिन्हें ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया गया है, उन्हें फिर से हिन्दू बनाना, हिन्दुओं के धार्मिक त्यौहार बनाना आदि। हिन्दू महासभा के एक नेता हरदयाल लाल ने लाहौर के पत्र 'प्रताप' में जंगी हिन्दू धर्म का निम्नलिखित कार्यक्रम प्रकाशित किया—

> "मैं घोषणा करता हूँ कि हिन्दुस्तान और पंजाब में हिन्दुओं का भविष्य चार स्तम्भों पर आधारित है—1. हिन्दू समाज, 2. हिन्दुओं की सर्वोच्चता, 3. मुसलमानों को हिन्दू बनाना, 4. अफ़गानिस्तान और सरहदी ज़िलों को अधीन करना तथा वहाँ के लोगों को हिन्दू बनाना। जब तक हिन्दू क़ौम इन कामों को पूरा नहीं कर लेती, तब तक हमारे बाल-बच्चों और नाती-पोतों की सुरक्षा पर हमेशा ख़तरा बना रहेगा और हिन्दू जाति का शान्तिपूर्ण अस्तित्व असम्भव हो जाएगा।"—*भारत का मुक्ति संग्राम*, अयोध्या सिंह : पृ. 450-51

'मुस्लिम लीग' और 'हिन्दू महासभा' के इन दृष्टिकोणों से हिन्दुओं और मुसलमानों में कैसी आग फैली होगी और राष्ट्रीय आन्दोलन को कितना बड़ा आघात लगा होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है। इससे ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को भी 'फूट डालो और राज करो' वाली अपनी नीति को प्रभावी बनाने में काफ़ी मदद मिली। हिन्दू-मुसलमान की संकीर्ण मानसिकता को खाद-पानी देकर ब्रिटिश हुकूमत ने और कुछ सिरफिरे स्वार्थी नेताओं ने भी साम्प्रदायिकता की आग भड़कायी, जिसकी भयंकर ज्वाला में कई-कई बार देश को जलना पड़ा और जिसे शान्त करने के लिए महात्मा गाँधी को बार-बार उपवास करके अपने जीवन को संकट में डालना पड़ा, फिर भी यह ज्वाला शान्त नहीं हुई। वह तात्कालिक दबाव में मन्द तो पड़ जाती थी, किन्तु रह-रहकर भड़क उठती थी, जिसका भयानक परिणाम 1946-47 ई. में उस समय दिखाई पड़ा, जब हिन्दुस्तान दो हिस्सों में विभक्त होकर आज़ाद तो हुआ, किन्तु असंख्य हिन्दुओं-मुसलमानों की नृशंस हत्याओं से यह धरती लाशों से पट गयी, ख़ून से लाल हो उठी और रोते-बिलखते लोगों की करुण चीत्कारों से दहल उठी। हिन्दू-मुसलमान का यह विष-बीज इस देश की धरती में इतनी गहराई से बोया जा चुका है कि आज़ादी के पचास वर्षों के बीत जाने के बाद भी वह जब-तब अंकुरित होकर साम्प्रदायिकता के विषैले वृक्ष के रूप में लहलहा उठता है और हिन्दुओं-मुसलमानों की मार-काट से यहाँ का जन-जीवन भयाक्रान्त और असुरक्षित हो जाता है।

साम्प्रदायिकता के साथ-साथ स्वाधीनता आन्दोलन को कमज़ोर करनेवाली कुछ अन्य बातों के अलावा भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस का दो दलों में विभक्त होना भी है। कॉंग्रेस में गरमदल और नरमदल की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर पृथक् रूप से दृढ़ होती गयी। गाँधी जी ने नरमदल की राजनीति को आगे बढ़ाया, दूसरी तरफ़ लाला

लाजपत राय आदि ने गरमदल को बढ़ावा दिया, जिसकी कोख से राष्ट्रवादी क्रान्तिकारियों का जन्म हुआ, जिनका विश्वास सशस्त्र क्रान्ति में था। एक ओर स्वाधीनता-संघर्ष के लिए गाँधीजी के पास सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा के अस्त्र थे तो दूसरी ओर क्रान्तिकारी राष्ट्रवादियों के पास बम और पिस्तौल के साथ-साथ लूटपाट के आतंककारी तरीक़े थे। क्रान्तिवादियों के संगठन 'हिन्दुस्तान रिपब्लिक एसोसिएशन' का एक सैनिक संगठन भी था, जिसका नाम था 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी'। इस संगठन का 'रिवोल्यूशनरी' नामक एक पर्चा 1925 ई. में छपा था, जिसमें हिन्दुस्तान में सशस्त्र क्रान्ति का आह्वान किया गया था। उल्लेखनीय यह है कि नरमपन्थी भी स्वाधीनता और स्वराज चाहते थे और गरमपन्थी भी, किन्तु दोनों का रास्ता भिन्न था। एक का विश्वास नैतिक और वाजिब प्रतिरोध एवं विरोध के रास्ते से ब्रिटिश शासन को मजबूर करके स्वराज प्राप्त करना था और दूसरे का रास्ता था संघर्ष करके अपना राज कायम करना। क्रान्तिकारियों ने अंग्रेज़ों से याचना की बजाय संघर्ष का रास्ता चुना और ऐसी स्थिति पैदा करनी चाही कि वे देश छोड़कर भाग जाएँ। यदि क्रान्तिकारी सफल हुए होते तो यही स्थिति होती, तब न देश बँटता और न ही साम्प्रदायिक विद्वेष की आग स्थायी रूप से इस देश में धधकती, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इसके विपरीत राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी कुचले गये, मारे गये और जेलों में डालकर तरह-तरह से सताये गये। क्रान्तिकारियों का उद्देश्य महान था, वे अपने निश्चय से डिगे नहीं। उन्होंने 'वन्देमातरम्' कहते हुए फाँसी के फन्दों को भी सहर्ष चूम लिया। चन्द्रशेखर आज़ाद, पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल', खुदीराम बोस, भगतसिंह, अशफ़ाकउल्लाह आदि की क़ुर्बानी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के चंगुल से देश के उद्धार के लिए की गई अविस्मरण क़ुर्बानी है।

श्यामनारायण पाण्डेय का कवि-मानस इन्हीं राजनीतिक परिस्थितियों के बीच तैयार हुआ। वे महात्मा गाँधी से तो प्रभावित थे, किन्तु सुभाषचन्द्र बोस की नीतियों के प्रति उनका विशेष झुकाव था। वे लाला लाजपतराय और हिन्दू महासभा के विचारों से भी काफ़ी प्रभावित थे। उनकी समझ में यह नहीं आता था कि महात्मा गाँधी सुभाषचन्द्र बोस से क्यों चिढ़ते थे और 'मुस्लिम लीग' के बन्द दरवाज़े के सामने वे हाथ जोड़कर क्यों खड़े रहते थे—

> "महात्मा गाँधी भगवान राम के भक्त युगावतार महात्मा तो थे ही, संवेदनशील भी उनके जैसा दूसरा नहीं था। लेकिन यह बात समझ में नहीं आती कि राष्ट्रहित के लिए काल को चुनौती देनेवाले वीरभद्र के समान तेजस्वी बोस से उन्हें क्यों चिढ़ थी और मुस्लिम लीग के बन्द दरवाज़े के सामने हाथ जोड़कर खड़े रहने का क्या तुक था? उनके लाख प्रयत्न करने पर भी लीग ने काँग्रेस का साथ नहीं दिया, बल्कि पग-पग पर रोड़े अटकाती रही।"
>
> — (*आधुनिक कवि*—17, पृ. 6)

श्यामनारायण पाण्डेय के इस स्थिति-विश्लेषण से उनकी मनोदशा को समझा जा सकता है। यह मनोदशा उनकी ही नहीं थी, उस समय के असंख्य लोगों की थी। यह सच्चाई है कि गाँधीजी के नेतृत्व में लोगों की जितनी गहरी आस्था थी, उनके कुछ निर्णयों से लोग असहमत और क्षुब्ध भी रहते थे। जवाहरलाल नेहरू भी उनकी बहुत सारी बातों से असहमत रहते थे, किन्तु गाँधी जी के नेतृत्व को भी अपरिहार्य मानते थे। गाँधी जी के अनेक निर्णयों से यदा-कदा हिन्दूमानस क्षुब्ध भी होता रहता था। कभी-कभी राष्ट्रीय आन्दोलन जब अपने पूरे वेग में होता था, गाँधी जी सत्य, अहिंसा के अस्त्र से उसे बीच में ही रोक देते थे। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' जैसा क़ौमी तराना लिखनेवाले डॉ. इकबाल आदि ने जब पाकिस्तान की माँग उठाई तो सारा हिन्दू समाज विक्षुब्ध हो उठा। उस समय की परिस्थितियों का भी विश्लेषण करते हुए श्यामनारायण पाण्डेय ने लिखा है—

> "गौतम बुद्ध और महावीर के पदचिह्नों पर चलनेवाले हिन्दू एक दूसरे को चकित आँखों से देख ही रहे थे, तब तक पाकिस्तान की नींव निहत्थों की निर्मम हत्या, बलात् धर्म-परिवर्तन, असहाय अबलाओं के साथ बलात्कार तथा जलते हुए नगरों और गाँवों की भयंकर लपटों के सहारे उठने लगी। गर्ग, गौतम, कणाद और कपिल की जन्म धरती रक्त से नहाने लगी, बड़े-बड़े लोकरक्षक तलवार के घाट उतार दिये गये, हिन्दू-मुस्लिम का नारा बुलन्द करनेवाले कोटरों में घुस गये। हिन्दुओं की सहनशक्ति जब क्षीण होने लगती, आकाश में जब वज्रवर्षी लाल-लाल बादल मँडराने लगते, भयंकर तूफ़ान उठनेवाला होता तो गाँधीजी अनशन पर बैठ जाते, मरने की धमकी देने लगते। हिन्दुओं के कण्ठ में जय बजरंगबली का हुंकार गड़गड़ाकर रह जाता और उनका सारा जोश आँखों से बहने लगता। यह था धर्मभीरु हिन्दू जाति पर महात्मा शब्द का प्रभाव। यवन बर्बरों और हिंसक गोरों के कराल जबड़ों के बीच पिसी जा रही थी हिन्दू जाति, उनकी विद्या और संस्कृति।"
>
> (*आधुनिक कवि*—17, भूमिका, पृ. 7)

इस विश्लेषण से जहाँ यह स्पष्ट होता है कि महात्मा गाँधी के कुछ निर्णयों से हिन्दू जनता इसलिए असन्तुष्ट हो जाती थी, क्योंकि उनसे उसका आक्रोश दब जाता था, इसी के साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि महात्मा गाँधी के अनेक निर्णय मुस्लिम लीग और मुसलमानों के पक्ष में होते थे। यह आरोप राष्ट्रवादी हिन्दुओं का रहा है और इसी समझ के चलते हिन्दूवादी संगठन फूलते-फलते रहे हैं और इसी की चरम परिणति महात्मा गाँधी की नृशंस हत्या में दिखाई पड़ी। श्यामनारायण पाण्डेय ने 'यवन बर्बरों' और 'हिंसक गोरों' को एक साथ 'हिन्दू जाति' के ख़िलाफ़ स्वीकार करके यह भी रेखांकित किया है कि उनकी चिन्ता के केन्द्र में केवल 'हिन्दू

जाति' और 'हिन्दू संस्कृति' है। उस समय गाँधी जी के प्रयत्नों और प्रगतिशील विचारकों के सहयोग से राष्ट्रीयता का जो व्यापक परिप्रेक्ष्य तैयार हुआ था, उसमें हिन्दुओं के साथ-साथ मुसलमानों की भी भागीदारी को अहमियत मिली थी, श्यामनारायण पाण्डेय उस व्यापक दृष्टि को आत्मसात् नहीं कर सके। इसके विपरीत उन्होंने किसी भी हिन्दूवादी संगठन की तरह 'हिन्दू जाति', 'हिन्दू धर्म' और 'आर्य संस्कृति' का ही ज़ोर-शोर से प्रचार किया और इन्हीं के संवर्द्धन और संरक्षण में अपनी समूची काव्य-शक्ति लगा दी। डॉ. रामदरश मिश्र ने बहुत सही लिखा है कि श्यामनारायण पाण्डेय की राष्ट्रीयता अपने समय की सामासिक भारतीय राष्ट्रीयता न होकर हिन्दू राष्ट्रीयता है। (*हिन्दी साहित्य का इतिहास* : सं. नगेन्द्र : पृ. 630) अपनी 'हिन्दू राष्ट्रीयता' को ही परिपुष्ट करने के लिए उन्होंने भारतीय इतिहास के हिन्दू वीरों और पुराणों के धीरोदात्त नायकों के शौर्यपूर्ण कृत्यों का वर्णन किया और एक ऐसे हिन्दू राष्ट्र का सपना देखा, जहाँ हर तरह से सुख-शान्ति होगी। ऐसी शासनव्यवस्था के रूप में उन्होंने अपने 'शिवाजी' काव्य में शिवाजी के उत्तम शासन-प्रबन्ध को चित्रित किया है, जिसमें न तो हिन्दू-मुस्लिम झगड़े हैं, न अन्याय और अत्याचार है, न कोर्ट-कचहरी है और न गो-वध होता है। यह श्यामनारायण पाण्डेय की जातीय राष्ट्रीयता का वह सपना है, जिसमें हिन्दू जाति, हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति सुरक्षित रह सकती है। इतना अवश्य उल्लेखनीय है कि उन्होंने साम्प्रदायिक विद्वेष को न तो पनपाया है, न भड़काया है। उनकी रचनाओं में हिन्दू-मुसलमान कहीं भी, किसी भी तरह आमने-सामने नहीं हैं। एक तरह से मुस्लिम जनता भी उनकी हिन्दू जनता में ही समाहित है। चाहे राणाप्रताप और अकबर का युद्ध हो, शिवाजी और औरंगज़ेब का युद्ध हो और रावल रतनसिंह तथा अलाउद्दीन ख़िलजी का युद्ध हो, श्यामनारायण पाण्डेय ने कहीं भी मुस्लिम विरोधी स्वर को उभरने नहीं दिया है। उन्होंने इन युद्धों को अनीति, अनाचार और कुशासन के ख़िलाफ़ स्वाधीनता-संघर्ष के रूप में चित्रित किया है। ऐसा करके उन्होंने निःसन्देह भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष में एक ज़िम्मेदार एवं राष्ट्रचेता साहित्यकार के दायित्व की पूर्ति की है।

भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष को महात्मा गाँधी ने व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया था। उनका संघर्ष केवल राजनीतिक संघर्ष न था, वह मनुष्य की मुक्तिचेतना का ऐसा संघर्ष था, जिससे समाज में ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, ऊँच-नीच, छूत-अछूत, पूज्य-अपूज्य का भेद-भावजनित रोग-शोक न हो। महात्मा गाँधी ने देश के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का बहुत बड़ा रचनात्मक उपक्रम किया, जिसका भारतीय जनता और साहित्यकारों पर ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा। अनेक साहित्यकारों ने उनके दर्शन से प्रभावित होकर महत्त्वपूर्ण महाकाव्यों, उपन्यासों और नाटकों की रचना की। आधुनिक हिन्दी साहित्य

पर जितना बड़ा प्रभाव महात्मा गाँधी का है, उतना किसी अन्य व्यक्ति का नहीं। श्यामनारायण पाण्डेय ने गाँधीजी के उस व्यापक परिप्रेक्ष्य को आत्मसात् करने की कोशिश नहीं की। उन्होंने अपने समय के स्वाधीनता-संघर्ष से राष्ट्रीय चेतना को ग्रहण किया और उसे क्रान्तिकारी राष्ट्रवादियों के स्वर से जोड़कर वीरता की हुंकृति और युद्धों की झंकृति से भर दिया। उल्लेखनीय है कि स्वाधीनता-संघर्ष के दौरान सामाजिक जीवन में कई सुधारवादी आन्दोलन चले, स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को लेकर अनेक कोणों से प्रगतिशील विचार आये, मज़दूरों ने अनेक आन्दोलन करके अपनी संगठन-शक्ति का परिचय दिया, हरिजनोद्धार और हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश को लेकर अनेक आन्दोलन हुए, गाँधी जी के चरखे और स्वदेशी आन्दोलन ने आर्थिक आत्मनिर्भरता और आर्थिक आज़ादी का मार्ग प्रशस्त किया, किन्तु श्यामनारायण पाण्डेय ने अनुभव के इस व्यापक फलक पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने जन्मभूमि के उद्धार के लिए, स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए और राष्ट्र के मान-सम्मान एवं अभिमान की रक्षा के लिए अतीत के सोये हुए वीरों के शौर्य एवं बलिदान का गान करके हिन्दू जनता में देश, जाति, धर्म और संस्कृति के लिए बलिदान हो जाने का उदात्त भाव भरा। उनकी चेतना आद्यन्त क्रान्तिकारी वीरों, योद्धाओं और शहीदों के साथ ही अन्तर्यात्रा करती रही है। उनकी 'मेरे शहीद तुम चिरंजीव' नामक कविता जहाँ शहीदों की क़ुर्बानियों की याद ताज़ा करती है, वहीं कवि के रूझान को भी स्पष्ट करती है।

अभिप्राय यह है कि स्वाधीनता-संघर्ष के दौरान श्यामनारायण पाण्डेय ने राष्ट्रीयता एवं वीरता के स्वर में ही अपनी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का भी ओजस्वी स्वर मिलाया। उन्होंने उस समय की साहित्यिक चेतना से भी पृथक् होकर अपनी स्वतन्त्र राह निकाली। उस समय हिन्दी में राष्ट्रवादी कविताओं के साथ-साथ छायावादी कविताओं की प्रधानता थी। छायावादी कवि स्वानुभूति को प्रधानता देते हुए प्रेम, सौन्दर्य और विरह के गीत गा रहे थे। श्यामनारायण पाण्डेय ने उनसे अपना स्वर नहीं मिलाया। बाद में प्रगतिवादियों ने यथार्थ की ज़मीन पर खड़े होकर जब शोषण और अन्याय के ख़िलाफ़ क्रान्तिकारी आवाज़ बुलन्द की, तब भी वे उधर नहीं गये। उनकी दृष्टि में ये सभी कविताएँ वाद-ग्रस्त थीं। उस समय की साहित्यिक परिस्थिति और उसके बीच अपनी विशिष्ट उपस्थिति को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा है—

> "देश की राजनीति में ही नहीं, कविता के क्षेत्र में भी परिवर्तन हुए। मूक वेदना का नीरव हाहाकार शान्त हो गया, अव्यक्त गीतों के व्यंग्य, व्यंग्य बन गये और अधिक दौड़ने से प्रगतिवादियों के पैरों में छाले पड़ गये। अब तो नाज-नखरों के साथ लम्बे बालों पर हाथ फेरते हुए सारंगी स्वर से कविता पढ़नेवालों की धूम है, निरी तुकबन्दियों से हँसानेवाले अनेक विचित्र नामधारी

कवियों की पूछ है और रीति-मर्यादा भिन्न शब्दों के जाल बिछानेवाले जादूगर कवियों की धाक है। साथ ही उन युवती कवयित्रियों का भी रंग है, जो स्त्री-सुलभ अपने शील-संकोच को घर के किसी कोने में रखकर रूप और कण्ठ के बल पर लोककल्याण के लिए निकल पड़ी हैं।

......लेकिन अनेक रूप-रंग के इन कवि-परिन्दों से कविता-कानन तभी तक ध्वनित रहता है, जब तक किसी केसरी के गर्जन से वातावरण नहीं थरथरा उठता। सिंह-गर्जन से उन जीवों के प्राण ही नहीं कण्ठगत होते, अपितु धड़कता हुआ अन्तर भी यह स्वीकार कर लेता है कि जंगल का अधिपति सिंह ही है, औरों की सत्ता कुछ नहीं।" (आरती, पृ. 39-40)

इससे साफ़ जाना जा सकता है कि श्यामनारायण पाण्डेय की कविता उस समय के कविता-कानन में सिंह-गर्जना करनेवाली कविता है। उन्होंने रूपक के सहारे जो कुछ कहा है, उसमें सत्यांश तो है, किन्तु पूर्ण सत्य नहीं, इतना अवश्य सत्य है कि वे सिंह की तरह गर्जन करनेवाले वीररस के महत्त्वपूर्ण कवि हैं और यह भी सत्य है कि जब वे मंच पर *हल्दीघाटी* या *जौहर* के छन्दों को पढ़ते थे तो तमाम कवियों के चेहरों की कान्ति मन्द पड़ जाती थी। वैसे उस समय बालकृष्ण शर्मा नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी और रामधारी सिंह 'दिनकर' जैसे कवि थे, जो अपनी ओजपूर्ण और व्यापक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से सम्पन्न क्रान्तिकारी कविताओं से लोगों के अन्तर्जगत में हलचल मचा देते थे। इनमें भी श्यामनारायण पाण्डेय का स्वर अपनी जातीय राष्ट्रीयता के कारण अलग-थलग पड़ जाता था। श्यामनारायण पाण्डेय ने जिस समय *हल्दीघाटी* और *जौहर* जैसे काव्यों की रचना की, उस समय हिन्दी में छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की धारा बह चुकी थी, किन्तु उन पर इन धाराओं की एक छींट भी न पड़ी। उनकी काव्य-साधना वाद-मुक्त काव्य-साधना का उदाहरण है। उन्होंने तप, त्याग, बलिदान और स्वाभिमान से भरा हुआ राष्ट्रीयता और वीरता का जो पथ चुना, उस पर वे अकेले आजीवन चलते रहे। उन्होंने अपने को 'सिंह' के रूप में प्रतिष्ठित किया और यह सिद्ध कर दिया कि सिंह अकेले ही दहाड़कर जंगल में अपनी उपस्थिति जताता रहता है।

आज़ादी के बाद देश की परिस्थितियों में व्यापक परिवर्तन हुआ। अपने संविधान के अनुसार देश ने अपने विकास की योजनाएँ बनाईं, नये-नये सपने सँजोए और सामाजिक-आर्थिक एवं शैक्षिक जीवन में प्रगति के डग भी भरे, किन्तु बड़ी जल्दी यह देश सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संकटों के जाल में फँस गया। 1962 ई. में चीन और 1965 ई. में पाकिस्तान के आक्रमण से देश को कई तरह के आघातों को सहना पड़ा। नेहरू की मृत्यु के बाद लाल बहादुर शास्त्री के नेतृत्व में देश ने स्वाभिमान को सँजोया, विश्वबिरादरी में अपने को ताक़तवर देश के रूप में प्रतिष्ठित भी किया, किन्तु उनकी मृत्यु के बाद विभिन्न क्षेत्रों में पतन

की जो शुरूआत हुई वह अभी भी रुकी नहीं। एक समय इन्दिरा गाँधी ने देश को शक्तिशाली नेतृत्व अवश्य प्रदान किया, किन्तु आठवें दशक तक आते-आते उनकी भी दिशा बदल गयी। उन्होंने 1975 में जो आपात्काल लगाया, उससे इतनी त्राहि-त्राहि मची कि 1977 में जब 'जनता पार्टी' का शासन आया तो लोगों ने 'दूसरी आज़ादी' का जश्न मनाया। श्यामनारायण पाण्डेय ने आज़ादी के बाद देश की इन उठती-गिरती स्थितियों को भी अपनी आँखों से देखा था, किन्तु उन्होंने इस अवधि में भी ऐतिहासिक एवं पौराणिक काव्यरचना में ही अपने को तल्लीन रखा। इतना अवश्य है कि इस अवधि में उन्होंने देश के नवयुवकों के चरित्र-निर्माण और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना को परिपुष्ट करने का कार्य किया। 1969 ई. में प्रकाशित *शिवाजी* महाकाव्य के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है—"मैं लिखते समय से ही आश्वस्त हूँ कि *शिवाजी* महाकाव्य सभी वर्गों का मार्गदर्शन करेगा; स्वदेश, स्वधर्म और अपनी संस्कृति के प्रति आस्था बढ़ेगी, भारतीय कहलाने में संकोच नहीं होगा और अपनी भाषा गौरवान्वित होगी। लोग सच्चरित्र, अनुशासित, साहसी, नीति-निपुण, विवेकशील, संगठित और विजयोन्मुख होकर भारतीय राष्ट्रजीवन की प्रतिष्ठा बढ़ाएँगे।" उन्होंने शिवाजी काव्य की रचना-भूमि और उसकी महत्ता को रेखांकित करते हुए लिखा है—

> "जो शून्य से नयी सृष्टि का निर्माण कर सकता है, अपनी शक्ति-युक्ति से बड़े-बड़े बर्बर सम्राटों को धराशायी कर सकता है, जो महाकवियों की प्रतिभा का विषय बन सकता है और जिसके दर्शन-स्रवन के आत्मदर्शी महात्मा भी रायगढ़ का चक्कर लगाया करते थे, उस महान चमत्कारी राष्ट्रपुरुष शिवाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व को उजागर करना कितना श्रेयस्कर होगा, इस कल्पना से प्रभावित होकर राष्ट्रहित के लिए मैंने *शिवाजी* महाकाव्य की रचना करके धर्म, संस्कृति और वीरत्व की अर्चना की है।"
>
> (*आधुनिक कवि*-17, भूमिका पृ. 11)

इन पंक्तियों से यह जाना जा सकता है कि स्वातन्त्र्योत्तर काल में श्यामनारायण पाण्डेय ने 'राष्ट्रहित' को ध्यान में रखकर ऐसी रचनाओं का प्रणयन किया, जो देश में फैली हुई अराजकता, अनैतिकता, आचरणभ्रष्टता, उच्छृंखलता, बुद्धि-भ्रष्टता, चरित्रहीनता और धर्म-संस्कृति की घोर उपेक्षा के विरुद्ध लोगों में सदाचार, कर्त्तव्यपरायणता, देश-प्रेम, धर्म एवं संस्कृतिनिष्ठ, तप, त्याग, बलिदान जैसे गुणों का विकास कर सकें। वे देश की तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं प्रशासनिक स्थितियों से बहुत क्षुब्ध थे। उन्होंने 1976 ई. में देश की स्थिति का बयान करते हुए लिखा था—

"आज देश का जीवन स्वत्व के विस्मरण से अस्त-व्यस्त है, धर्म और संस्कृति

उपेक्षित है, परस्पर ईर्ष्या-द्वेष-असूया और कलह का ज्वार है, सीमाओं पर शत्रु की गर्जना है, बड़े-वड़े नीतिविशारद, मेधावी व्यक्तियों की बुद्धि मारी गयी है, सभ्य परिधान में देशद्रोही ही लोगों को पथभ्रष्ट बनाने में संलग्न है। उच्च पदस्थ अधिकारी चारित्र्य को हेय समझकर किसी भी मार्ग से धन-प्रतिष्ठा और उपाधि प्राप्त करने को ही जीवन का चरम लक्ष्य समझ बैठे हैं, लोकजीवन परानुकरणशीलता और अनुशासनहीनता के कारण उच्छृंखल हो गया है।" (*आधुनिक कवि*-17, भूमिका, पृ. 12)

उस समय की नारियों की दशा का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा—

"आज की नारियाँ धर्म-संस्कृति को भुलाकर ऐसे मार्ग पर चल रही हैं जो चलने में सुखद तो मालूम होता है लेकिन उस पथ पर चलने से प्रायः हिंसक-कामुकों की शिकार हो जाती हैं। आये दिन बलात्कार और हत्या के समाचार छपते रहते हैं। जिस देश में भ्रूण-हत्या जायज हो, कन्याओं को गायिका बनाकर नचाया जा रहा हो, अश्लील से अश्लील फ़िल्म पर कोई रोक नहीं हो, वह देश कहाँ जाकर गिरेगा, राम ही जानें।" (वही, पृ. 10)

स्वातन्त्र्योत्तर भारत की चहुर्मुखी गिरावट से वे बहुत व्यथित थे। लोगों में फैलती हुई आधुनिकता की सनक और झूठ, अनाचार, अविश्वास और अनैतिकता के दमघोंटू वातावरण पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने अपनी गहरी चिन्ता भी जतायी और इन हालातों को बदलने के लिए अपनी सन्नद्धता का भी उद्घोष किया—

"इस वैज्ञानिक और धर्मनिरपेक्ष देश में आचार-विचार, रहन-सहन, संस्कृति ओर सभ्यता किस अज्ञात भविष्य की ओर बही जा रही है, आगे इसका क्या परिणाम होगा, सदा से ऋत और सत्य के प्रशस्त-पथ पर चलनेवाला यह धार्मिक देश आधुनिकता की आँधी में उड़ता हुआ किस धरातल पर खड़ा होगा; अनैतिकता, अनाचार और अविश्वास के घनान्धकार में कब तक भटकता रहेगा, विषैले धुएँ से भरे हुए दमघोंटू वातावरण में साँस लेनेवाले किसी का कब तक भला मनाते रहेंगे। झूठ, वंचना और अधर्म की काँपती नींव पर सामाजिक व्यवस्था का खड़ा राजप्रासाद कब तक टिका रह सकेगा?" (वही, पृ. 1)

अपने समय के समाज के इस कटु साक्षात्कार से श्यामनारायण पाण्डेय ने प्रेरणादायी काव्य रचने का बीड़ा उठाया और उन्होंने *बालिवध, वशिष्ठ, परशुराम* जैसे पौराणिक काव्यों के साथ-साथ *शिवाजी* जैसे ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना की और यह उम्मीद जतायी कि इससे भारत के नवयुवकों और नवयुवतियों में सदाचार-निष्ठा, तप, त्याग, बलिदान और सच्चरित्रता का विकास होगा। उन्होंने भारतीय जनता में प्राचीन जीवन-मूल्यों और आदर्शों के प्रति अनुराग पैदा किया और

दृढ़ता के साथ उसे 'आर्य-धर्म' और 'आर्य-संस्कृति' के पथ पर चलने की सलाह दी। यह उनकी पुनरुत्थानवादी चेतना का ही तक़ाज़ा था कि उन्होंने नवीन जीवन-परिस्थितियों के बीच से उभरनेवाले जीवन-मूल्यों के स्थान पर सनातन एवं परम्परापुष्ट मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा दी। उन्होंने नये भारत में वशिष्ठ, परशुराम, राम, कृष्ण, महाराणा प्रताप, शिवाजी और महारानी पद्मिनी के जीवनादर्शों को ही फलने-फूलने का वातावरण बनाया और यह माना कि इसी रास्ते से भारत पुनः अपने खोये हुए स्वत्व और गौरव को प्राप्त कर सकेगा।

इस तरह हम देखते हैं कि श्यामनारायण पाण्डेय ने अपने दीर्घकालीन साहित्यिक जीवन में स्वातन्त्र्य-पूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर काल की जिन परिस्थितियों का साक्षात्कार किया था, उनके आलोक में ऐसी कृतियों का सृजन किया, जो देशोद्धार और देश-निर्माण में सहायक हो सकें। उन्होंने हिन्दी कविता की युगीन काव्यधाराओं, वादों और प्रवृत्तियों के साथ ताल मिलाने की अपेक्षा अपने स्वर में ही गाते रहने का जो रास्ता चुना, उसी पर वे अकेले पथिक की तरह चलते रहे। इस बीच हिन्दी कविता में अनेक वाद और आन्दोलन खड़े हुए, श्यामनारायण पाण्डेय ने उनकी तरफ़ देखा तक नहीं, उल्टे उन्होंने उनकी आलोचना की और राष्ट्रवादी, क्रान्तिकारी एवं सद्‌गुणों का विकास करनेवाली सांस्कृतिक चेतना से सम्पन्न तथा वीररस प्रधान ऐसी कविताएँ लिखीं, जिनसे हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा में उनका नाम अमर हो गया।

2

जीवन-परिचय

आधुनिक काल में राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत वीररस प्रधान काव्य-रचना करनेवाले पं. श्यामनारायण पाण्डेय का जन्म श्रावण कृष्णा पंचमी, संवत् 1964 (सन् 1907), दिन मंगलवार को उत्तर प्रदेश के आज़मगढ़ ज़िले के डुमराँव (द्रुमग्राम) नामक ग्राम में एक सरयूपारीण ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम रामाज्ञा पाण्डेय और माता का नाम बसाती देवी था। श्यामनारायण पाण्डेय अपने माता-पिता की छठवीं सन्तान थे। इनके दो बड़े भाई थे—सत्यनारायण और जगन्नारायण तथा तीन बड़ी बहनें थीं—सूर्या, सूर्यावती और चन्द्रावती। पं. श्यामनारायण पाण्डेय जब आठ वर्ष के थे, तभी इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। इनके लालन-पालन का दायित्व इनके बड़े भाई सत्यनारायण और माँ पर आ गया। बड़े भाई अधिकतर आसाम में रहते थे, फलतः इन्हें अपनी माता की ही देख-रेख में प्रारम्भिक जीवन व्यतीत करना पड़ा। पिता के असामयिक निधन से इन्हें और इनके परिवार को आर्थिक तंगी के साथ-साथ जीवन की अन्य जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ा। आर्थिक तंगी और दयनीयता इस हद तक थी कि कभी-कभी एक वक़्त के भोजन का प्रबन्ध भी बड़ी मुश्किल से हो पाता था। कभी माँ जब भोजन की व्यवस्था नहीं कर पाती थीं और ये खेलते-खेलते उसकी गोद में आ बैठते थे तो वह प्यार से इनके सिर पर हाथ फेरने लगती थी और उसकी आँखें करुणार्द्र होकर आँसू टपकाने लगती थीं। इस कारुणिक दृश्य का बालक श्यामनारायण के चित्त पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा, जो उसे जीवन भर विस्मृत नहीं हुआ। उन्होंने लिखा है कि उन्हें वह दृश्य जब भी याद आता था तो उनका हृदय दुःख के असीम सागर में डूब जाता था।

श्यामनारायण पाण्डेय की माता पढ़ी-लिखी नहीं थीं। वे परम आस्तिक एवं धर्मनिष्ठ महिला थीं। स्नान के बाद वे गले में पड़ी तुलसी की माला का जप करती थीं। तीर्थाटन, व्रत और पूजा में उनका अगाध विश्वास था। वे प्रति वर्ष गंगा-स्नान के लिए जाती थीं, महीने की दोनों एकादशी और चारों रविवारों को व्रत रखती थीं। साधु-सन्तों की सेवा करना और उनके प्रवचनों को सुनना उन्हें बहुत प्रिय था। सन्त-सभा में उपस्थित होकर मन्त्रमुग्ध भाव से उनके प्रवचनों को सुनते समय वे खाने-पीने की चिन्ता और घर-बार की फ़िक्र से भी मुक्त हो जाया करती थीं। माँ

की इस भाव-विह्वल आस्तिकता, भक्ति और धर्मनिष्ठता का बालक श्यामनारायण पाण्डेय के चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ा। इसके साथ ही बाबा और चाचा की धर्म-परायणता और पौहारी जी के गुरु-गम्भीर व्यक्तित्व ने भी श्यामनारायण पाण्डेय के अन्तस्तल में आध्यात्मिकता की तीव्र लौ प्रज्वलित कर दी। उन्होंने स्वयं लिखा है—

> "सांस्कृतिक जीवन जीने में अग्रणी सरयूपारीण ब्राह्मण-कुल में संवत् 1964 सावन कृष्ण पंचमी को जन्म, घर में नित्य चन्दन-धूप-दीप और नैवेद्य से शालिग्राम भगवान की पूजा, समय-समय से पंचदेवों का आह्वान-पूजन, विधवा माँ के गले में तुलसी की माला, आँखों में सहज स्नेह, रोम-रोम में रामभक्ति की सुगन्ध, चाचा के गले में रुद्राक्ष, चन्दन-चर्चित भव्य भाल पर सदाचार के तेज की दीप्ति, वाणी में हरिकथा की कल्लोलिनी, बाबा की बूढ़ी आँखों से रामायण पाठ करते हुए श्वेत घनी दाढ़ी पर ढुलकते हुए गोल-गोल आँसू तथा गोमुखी के भीतर निरन्तर माला फेरते हुए परम पूज्य पौहरी जी का शिष्यत्व, सबने मिलकर मेरी रक्तवाहिनी नसों में आस्तिकता का अमृत भर दिया। भक्ति-भावना की जाह्नवी में मेरा अबोध मन डूब गया और प्राणों के भीतर मन्द-मन्द जलतरंग बजने लगा।" (*आधुनिक कवि*-17, पृ. 2)

उपर्युक्त धार्मिक एवं सांस्कृतिक वातावरण के बीच पले-बढ़े श्यामनारायण पाण्डेय का आन्तरिक व्यक्तित्व तैयार हुआ। आगे चलकर वह उनकी अगाध धर्म-निष्ठा, संस्कृति-प्रेम और राष्ट्रभक्ति के रूप में अभिव्यक्त हुआ।

प्रारम्भ में श्यामनारायण पाण्डेय का मन खेल-कूद, व्यायाम और कुश्ती-दंगल में अधिक लगता था। एक बार इनके भाई ने इसके लिए इन्हें काफ़ी डाँटा, उसी समय वहाँ पर उपस्थित एक सम्बन्धी ने भी व्यंग्यभरी नेक सलाह देते हुए कहा—"ब्राह्मण की शोभा पढ़ने-लिखने में है, अखाड़ेबाज़ तो अहीर होते हैं।" इस घटना का यह परिणाम हुआ कि इन्होंने कुश्ती-व्यायाम छोड़कर अपने मन को पूरी तरह पढ़ाई में लगा दिया।

श्यामनारायण पाण्डेय की प्रारम्भिक शिक्षा बकवल ग्राम में सम्पन्न हुई। इन्होंने 1924 ई. में हिन्दी मिडिल और 1925 ई. में उर्दू मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की। घर की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी, इसलिए इन्होंने पढ़ाई छोड़कर जीविकोपार्जन के लिए किसी वकील का मुहर्रिर बनने का निश्चय किया। इसके लिए ये अपने बहनोई जटायु चौबे के पास गये। वहाँ इनकी भेंट कवि ठाकुर शहज़ाद सिंह से हुई। उन्होंने इनकी प्रारम्भिक कविता की तुकबन्दियों को देखकर इन्हें संस्कृत पढ़ने की सलाह दी। उन्होंने बताया कि बिना संस्कृत पढ़े हिन्दी की प्रौढ़ कविता हो ही नहीं सकती। चूँकि श्यामनारायण पाण्डेय में नौ-दस वर्ष की अवस्था

में ही काव्य-रचना की प्रवृत्ति जागृत हो गयी थी, इसलिए इन्हें उनकी सलाह बहुत रुचिकर लगी। इन्होंने माधव संस्कृत पाठशाला, काशी और रामनगर के राजा की पाठशाला में प्रवेश लेने का प्रयत्न किया, किन्तु सफलता नहीं मिली। इनके बड़े भाई सत्यनारायण पाण्डेय ने इनका नाम संस्कृत पाठशाला मऊ (आज़मगढ़) में लिखा दिया। बाद में इन्होंने गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज, वाराणसी से 1927 ई. में प्रथमा की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद इनका नाम काशी में ही लाला भगवानदीन विद्यालय में लिखा दिया गया। यहीं से इन्होंने साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त की।

छात्र-जीवन में पाण्डेय जी को बराबर आर्थिक संकट से गुज़रना पड़ा। कभी-कभी ऐसी भी स्थिति आयी कि जीवन-निर्वाह के लिए भोजन की भी व्यवस्था कर पाना इनके लिए कठिन हो गया। उल्लेखनीय है कि चार-चार, पाँच-पाँच उपवास के बाद भी पाण्डेयजी ने किसी के सामने हाथ नहीं पसारा। उन्होंने तुलसी-पत्र खाकर दिन गुज़ार दिया, किन्तु न तो कहीं दीनता व्यक्त की और न तन-मन में शिथिलता आने दी। इस साधना से उनका वह लौह व्यक्तित्व तैयार हुआ, जो अनेक रूपों में उनके काव्य में अभिव्यक्त हुआ है। अध्ययन-काल में ही पाण्डेय जी ने योगी जानकीदास से योग की भी शिक्षा ली, इससे उन्हें आत्म-साधना का गुर प्राप्त हुआ और उनका आत्म-बल परिपुष्ट हुआ।

संस्कृत की शिक्षा प्राप्त करने के बाद श्यामनारायण पाण्डेय ने संस्कृत महाविद्यालय, सारंग, वाराणसी में लगभग 18-20 वर्षों तक अध्यापन-कार्य किया और प्रधानाचार्य के पद को भी सुशोभित किया, किन्तु अपने स्वाभिमानी एवं स्वतन्त्र व्यक्तित्व के कारण वे इस क्षेत्र में अधिक दिनों तक नहीं टिक सके।

सन् 1940 में श्यामनारायण पाण्डेय का विवाह गायत्री देवी के साथ हुआ। विवाहोपरान्त घर-गृहस्थी बनाने की जब चिन्ता बलवती हुई तो इन्होंने बनारस में एक छोटी-सी जगह में अपना घर बनवाया और वहीं स्थायी रूप से रहते हुए अध्ययन-अध्यापन में लगे रहे, किन्तु उनका यह वैवाहिक जीवन अधिक दिनों तक सुखपूर्वक नहीं चल सका। सन् 1944 में (सं. 2001) गायत्री का निधन हो गया। उनके लिए यह वज्राघात था। वे अहोरात्रि 'गायत्री' के ही शोक में डूबे रहने लगे। उसी समय उनका *जौहर* महाकाव्य भी समाप्त हुआ था। इस ग्रन्थ के आरम्भ में 'शुभे' शीर्षक के अन्तर्गत पाण्डेय जी ने अपनी दिवंगत पत्नी को बड़े करुणा-विह्वल शब्दों में याद करते हुए लिखा है—

> "यह लिखते हुए हृदय काँप रहा है कि *जौहर* की चिता के साथ ही तुम्हारी भी चिता धधक उठी। *जौहर* के निर्माण के समय हम दोनों में से किसी ने यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि इसका अन्त तुम्हारा अन्त है। लेखनी के पीछे कोई काली छाया चल रही है, छन्दों की चाल में कोई चाल है। *जौहर* के उद्‌भव में तुम्हारा मिलन, निर्माण-काल तक तुम्हारा सहयोग और अन्तिम

छन्द लिखते-लिखते तुम्हारा महानिर्वाण, एक साथ ही मेरे हृदय में अग्निबाण की तरह चुभ गये हैं। काश! पहले यह मालूम होता कि चित्तौड़ की उन सतियों के साथ तुम्हारा कोई अभेद्य सम्बन्ध है, तुम्हारे बिना न उनका व्रत पूरा होगा, और न *जौहर* की चिनगारियों की भूख मिटेगी तो मुझे दुःख न होता। दुःख तो इसलिए है कि अन्धकार के एकान्त में मुझे छला गया। पीयूष-प्रवाहिणी के तट से मेरे तृषाकुल मन को किसी ने खींचकर मरू में ढकेल दिया। सरले, *जौहर* के अनेक छन्दों में तुम्हारी अनुभूतियाँ, स्वीकृतियाँ और स्त्री-सुलभ कोमल भावनाएँ अंकित हैं, उन्हें तुम प्रकाश-रूप में अब नहीं देख सकतीं, उन्हें तुम अपने स्वरों में अब नहीं बाँध सकतीं, उन्हें तुम अपने स्वतन्त्र गीतों में मिलाकर अब नहीं गा सकतीं, यही सोचकर व्यथा से प्राण तड़प उठते हैं और पिछले जीवन के सुख आँखों से बहने लगते हैं। *जौहर* के छन्द तुम्हें कभी न भूल सकें, इसलिए तो मैं तुम्हें सामने रखने का लोभ संवरण न कर सका।"

उपर्युक्त उद्धरण से यह समझा जा सकता है कि पत्नी के निधन ने पाण्डेय जी को कितनी मर्मान्तक पीड़ा दी थी। *जौहर* काव्य को समाप्त करते समय 'दर्शन' नामक अध्याय में आत्मवृत्त के साथ-साथ इसकी सृजन-प्रेरणा को उद्‌घाटित करते हुए पाण्डेय जी ने 'गायत्री' को बड़े मार्मिक शब्दों में याद किया है। उल्लेखनीय है कि पाण्डेय जी को जीवन में दुख का पहला आघात तब लगा था, जब उनकी माता का देहान्त हुआ था। उस दुख को भुलाने के लिए उन्होंने काव्य-रचना का सहारा लिया। बाद में 'सतियों की जौहर ज्वाला' में कूदकर उनकी पत्नी ने उन्हें शोक के समुद्र में ढकेल दिया—

जननी-पद के जाते ही
उसकी मति थरथर डोली।
उसका घर फूँक किसी ने
सावन में होली खेली॥

वह व्यथा दूर करने को
कविता में बोला करता।
सहचरी 'सती' 'गायत्री' के
संग-संग डोला करता॥

जौहर समाप्त होते ही
मिल सतियों की माला में
उसकी वह साधुप्रिया थी
कूदी 'जौहर'—ज्वाला में॥

एकाकी गुरु-मन्दिर में
पहरों तक जप-तप करता
गायत्री-गुरु-मन्त्रों से
अन्तर के कल्मष हरता॥

शोक-विह्वल पाण्डेय जी ने निश्चय किया कि वे दूसरा विवाह नहीं करेंगे, किन्तु पत्नी उन पर एक पुत्री की ज़िम्मेदारी डाल गयी थीं, इसलिए विवश होकर उन्होंने एक वर्ष के भीतर ही गायत्री की ही बहन सरस्वती से विवाह कर लिया। पाण्डेय जी का जीवन पूर्वपत्नी के शोक से मुक्त होकर सुचारु रूप से चलने की ओर अग्रसर ही हुआ था कि पुत्री का देहान्त हो गया और कुछ ही वर्षों बाद सन् 1947 (सं. 2004) में उनकी दूसरी पत्नी भी भूदेव नामक पुत्र को जन्म देकर दिवंगत हो गयीं। इसके बाद उन्होंने रमावती देवी से विवाह किया, जिनसे देवमंगला, शीला, वन्दना, सर्वमंगला और अर्चना नाम की पाँच कन्याओं का जन्म हुआ। प्रथम तीन कन्याओं का अल्पकाल में ही स्वर्गवास हो गया। इस तरह पाण्डेय जी का वैवाहिक जीवन तमाम दुखों की चपेटों को सहते हुए आगे बढ़ता रहा। इतना अवश्य है कि उन्होंने कभी हार नहीं मानी, न वे हताश ही हुए। संघर्षों और दुखों के बीच पाण्डेय जी का व्यक्तित्व अग्नि में तपे सोने की तरह निरन्तर निखरता रहा।

अध्ययन-अध्यापन करते हुए श्यामनारायण पाण्डेय ने काशी में अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा व्यतीत किया, बाद में वे अपने जन्म-स्थान डुमराँव में ही आकर स्थायी रूप से रहने लगे। वृद्धावस्था में भी उन्होंने आत्मनिर्भर जीवन व्यतीत किया। उनकी परिश्रमशीलता और आत्मनिर्भरता का पता उनकी इन पंक्तियों से चल जाता है—

> "घर पर (डुमराँव में) अच्छी खेती है। अब खेत अधिया पर दिये जाते हैं, क्योंकि अब मुझसे खेती नहीं हो पाती। अच्छा बग़ीचा भी है, इससे भरण-पोषण का काम मज़े में हो जाता है।.....गृहवाटिका में सब्ज़ी बोता हूँ, कभी ख़रीदने की नौबत नहीं आती। मेरी गृहवाटिका ब्लॉक में प्रथम आयी थी, उद्यान अधिकारी ने अच्छा पुरस्कार दिया था।"[1]

पाण्डेय जी का बाह्य व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। सामान्य क़द, दोहरी काया, प्रशस्त ललाट, गेहुँआ रंग और उस पर फबती सफ़ेद धोती-टोपी और पूरी बाँह की क़मीज़; इन सबसे उनका जो बाह्य रूप-रंग बनता था, वह किसी को भी तुरन्त प्रभावित कर लेता था।[2] इस व्यक्तित्व को और गुरु-गम्भीर बना देती थी उनकी वाणी

1. *राष्ट्रीयता की अवधारणा और श्यामनारायण पाण्डेय का काव्य*—डॉ. चन्द्रप्रकाश आर्य, पृ. 276
2. *श्यामनारायण पाण्डेय : व्यक्तित्व और कृतित्व*—के. जी. कदम, पृ. 78

की गम्भीरता और ओजस्विता। अपनी ओजस्विता के चलते पाण्डेय जी चिर तारुण्य के कवि बने रहे। आरम्भ में उनमें जिस तरह का ओज और उत्साह था, वह उनके भावजगत में बराबर बना रहा और वृद्धावस्था में भी वे वीररस-प्रधान काव्य की सर्जना में लगे रहे। यह इस बात का प्रमाण है कि उनके भावों की तरुणाई कभी मन्द या शिथिल नहीं हुई।

पाण्डेय जी का बाह्य व्यक्तित्व जितना आकर्षक था, आन्तरिक व्यक्तित्व उतना ही प्रभावशाली था। कहा जा चुका है कि जीवन-संघर्षों ने उन्हें तपाकर खरा सोना बना दिया था। बचपन में ही उनमें स्वाभिमान की भावना भर गयी थी जो उम्र के साथ-साथ और प्रबल होती गयी। स्वाभिमान के कारण ही वे अधिक दिनों तक कहीं चाकरी (नौकरी) नहीं कर सके और सुख-सुविधा, सम्मान-पुरस्कार के लिए किसी के आगे-पीछे नहीं दौड़े। दिल्ली और लखनऊ की सरकारों की ओर भी उन्होंने कभी रुख़ नहीं किया। उन्होंने सदा आत्मप्रचार को हेय समझा और अपनी प्रवृत्ति के प्रतिकूल कुछ भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने काव्य-रचना भी अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार ही की। फ़रमाइशी और सतही चीज़ें लिखना उन्हें कभी काम्य नहीं रहा। वे धर्म, संस्कृति, राष्ट्रीयता और मानवता के पोषक रहे हैं। साहित्यिक वादों और नारों से दूर रहकर उन्होंने काव्य-साधना की है। *हल्दीघाटी* की रचना करते समय उनके मस्तिष्क में यह बात स्पष्ट रूप से विद्यमान थी कि उन्हें वादों से दूर रहकर आर्य-संस्कृति की स्वर-प्रतिष्ठा के लिए ही लिखना है और किसी प्रकार के साहित्यिक छल से बचना है—

> "अक्षरों में महाराणा प्रताप की तस्वीर बनाने के पहले उस समय के कवियों और उनकी कविताओं पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डाली, इसलिए कि जो कुछ मैं प्रस्तुत करूँ उसमें आर्य संस्कृति की स्वर-प्रतिष्ठा तो रहे ही, साथ ही अनेक वादों के अहं से भी दूर रहूँ और साहित्य को धोखा न दूँ।"

कहा जा सकता है कि श्यामनारायण पाण्डेय ने निश्छल भाव से साहित्य सृजन किया है। उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं लिखा, जो उनकी आत्मा के विरुद्ध हो। यही वजह है कि दीर्घकाल तक सृजनरत रहकर भी उन्होंने हिन्दी काव्य के उन वादों और प्रवृत्तियों से अपने को मुक्त रखा, जिनसे उनकी अन्तरात्मा का मेल नहीं हुआ। ऐसा वहीं साहित्यकार कर सकता है, जो स्वाभिमानी हो, सृजन की स्वाधीन चेतना से अनुप्राणित हो, सत्य-पथ का निर्भीक पथिक हो और जिसे अपनी अनुभव-सम्पदा पर भरोसा हो।

श्यामनारायण पाण्डेय में अपने देश और संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम था। इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने जीवन भर देश-प्रेम और संस्कृति-प्रेम की उदात्त भावना से परिपूर्ण ओजस्वी काव्य-ग्रन्थों का ही प्रणयन किया और साहित्यिक सम्मेलनों-समारोहों में अपनी ओजस्वी कविताओं का ओजपूर्ण पाठ करके अतीत के

सोये हुए वीरों को ही नहीं जगाया, प्रत्युत् पराधीनता की बेड़ी में जकड़ी हुई जनता को भी अपने मान-सम्मान, देश, धर्म और संस्कृति के लिए प्राणोत्सर्ग का पाठ पढ़ाया। वीरता, धीरता और गम्भीरता का अद्‌भुत संयोग था उनके व्यक्तित्व में। वे आत्म-संयमी और दृढ़-निश्चयी थे। इतिहास और पुराण के वीरों और बलिदानियों के चित्रण में उनके आन्तरिक व्यक्तित्व का बहुत बड़ा योगदान है। आत्म-परिचय देते हुए उन्होंने लिखा है–

मैं वीर करुण का अन्धड़ हूँ
तूफ़ान बवण्डर हूँ।
लेकिन अपनी मर्यादा की
सीमा के अन्दर हूँ।

वास्तव में, श्यामनारायण पाण्डेय का अन्तस्तल वीरता के साथ-साथ करुणा की शीतलता से भी भरा हुआ था। अन्याय, अत्याचार और अधर्म के ख़िलाफ़ वे हमेशा खड्‌गहस्त रहे और दीन-दुखियों के प्रति अत्यन्त करुणाशील भी। वे आदर्शवादी थे, किन्तु उनका आदर्शवाद केवल कल्पना की चीज़ नहीं था। उसका एक व्यावहारिक रूप था। समाज में अनीति न रहे और देश परतन्त्र न रहे, इसके लिए उन्होंने अपनी कविताओं से जो वातावरण बनाया, उसके लिए वे सदा स्मरण किये जाएँगे। उनके इस मन्तव्य से कोई भी असहमत नहीं हो सकता–

"बिना उत्साह के कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। राष्ट्रीय संकट के समय वीर कविता ही काम करती है।...... वीर रस की अनुपस्थिति में राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन मुर्दे की तरह है। शौर्यपूर्ण जीवन ही देश, जाति, धर्म और समाज की रक्षा का भार उठा सकता है।"

राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन में प्राण फूँकनेवाला और अतीत के सोये हुए वीरों को अपने काव्य-ग्रन्थों में जगानेवाला यह महान कवि 26 जनवरी 1989 ई. को अपने द्रुमग्राम (डुमराँव) में ही चिरनिद्रा में सो गया।

श्यामनारायण पाण्डेय को अपने जीवन-काल में काफ़ी मान-सम्मान मिला। वे कवि-सम्मेलनों के प्राण हुआ करते थे। उन्होंने स्वयं लिखा है–"कवि-सम्मेलनों के माध्यम से सारे हिन्दुस्तान को नाप चुका हूँ। अहिन्दी प्रान्तों में भी मैंने अपनी रचनाएँ पढ़ी हैं। अधिक न समझने पर भी सराही गयी हैं मेरी रचनाएँ, कदाचित् काव्यपाठ के आकर्षण से।" इससे उनकी लोकप्रियता और कवितापाठ की प्रभावोत्पादकता का पता चलता है। 1962 ई. में बर्मावासियों ने उनके *जौहर* काव्य के सन्दर्भ में उनका अभिनन्दन किया, नेपाल में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया। मॉरिशस आदि देशों से भी काव्यपाठ के लिए उन्हें निमन्त्रण मिला, किन्तु लम्बी यात्रा के कारण वे कहीं नहीं गये।

पाण्डेय जी को 1935-36 में ही लखनऊ प्रदर्शनी में *हल्दीघाटी* के पाठ पर शील्ड प्राप्त हुई थी, इसी ग्रन्थ पर उन्हें हिन्दी का 'देव पुरस्कार' और *जौहर* पर 'द्विवेदी पुरस्कार' मिला। 1974 में 'नेहरू स्मृति कवि-सम्मेलन' में 'हरिऔध कलाभवन', आज़मगढ़ ने उन्हें 'रजत खड्ग' समर्पित किया। उल्लेखनीय है कि आज़मगढ़ के तत्कालीन ज़िलाधिकारी ने द्रुमग्राम जाकर इन्हें उक्त खड्ग समर्पित किया था। 1977 ई. में कुमारसभा, बड़ा बाज़ार द्वारा कलकत्ते में *हल्दीघाटी* की लड़ाई की चतुःशती मनाई गयी, जिसमें पं. श्यामनारायण पाण्डेय का अभिनन्दन किया गया। 1978 ई. में हिन्दी साहित्य प्रकाशन, (मऊनाथभंजन) ने इनका भव्य अभिनन्दन किया। तात्पर्य यह है कि श्यामनारायण पाण्डेय को देश और प्रदेश की जनता ने काफ़ी मान-सम्मान दिया। 'आर्य धर्म का यह पुजारी' यद्यपि सबसे 'अलग और अकेला' था, किन्तु वह सबके आदर और स्नेह का भाजन भी था। वीरता और राष्ट्रीयता के निराले पन्थ पर चलता हुआ यह कवि दीर्घकाल तक भारतीय जनता का कण्ठहार बना रहा। आज भी *हल्दीघाटी* और *जौहर* के छन्द लोगों की जबान पर चढ़े हुए हैं और जब भी राष्ट्र पर कोई बाह्य संकट आता है या कहीं अनीति और अत्याचार का ज़ोर बढ़ता है, तब श्यामनारायण पाण्डेय के ओजस्वी छन्द जनता में उत्साह का संचार करते हैं। एक समय था, जब पाठशालाओं में अन्त्याक्षरी में पाण्डेय जी के ही छन्द छात्रों के काम आते थे। पाण्डेय जी हिन्दी के ऐसे कवि हैं, जिसने बालकों, युवकों और वृद्धों में समान रूप से वीरभावना का संचार किया और जनता को तप, त्याग, बलिदान और कर्तव्यपरायणता का पाठ पढ़ाया तथा उसमें देश, जाति, धर्म और संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम पैदा किया।

4

रचनाएँ

छात्र-जीवन में ही श्यामनारायण पाण्डेय की रचनात्मक प्रतिभा का उदय हो गया था। वे नौ-दस वर्ष की अवस्था से ही तुकबन्दियाँ करने लगे थे। कहा जाता है कि मिडिल स्कूल में ही उन्होंने छन्दों के उदाहरण के रूप में स्वनिर्मित छन्दों को सुनाकर अपने मिडिल स्कूल के हेडमास्टर श्री अमृतराय को आश्चर्यचकित कर दिया था। उस समय प्रसन्न होकर श्री अमृतराय ने इन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—"तुम एक दिन बड़े भारी कवि होगे।" हेडमास्टर की भविष्यवाणी सच हुई। श्यामनारायण पाण्डेय की काव्य-प्रतिभा का इतना द्रुत विकास हुआ कि वे पच्चीस-तीस वर्ष की आयु में ही *हल्दीघाटी* जैसे महाकाव्य की रचना में प्रवृत्त हो गये और 1939 ई. में जब यह महाकाव्य छपा तो वे न केवल अनेक पुरस्कारों से अलंकृत हो गये, बल्कि उनका *हल्दीघाटी* महाकाव्य हिन्दी जनता के कण्ठ-कण्ठ में गूँजने लगा। इस सन्दर्भ में उन्होंने स्वयं लिखा है—

> "प्रभु-शक्ति से प्रेरित होकर अध्ययन काल में ही मैं अपने यौवन की सारी उष्णता *हल्दीघाटी* में भरने लगा। सात वर्षों के बाद 1939 ई. में वह जनता की आकांक्षा की पूर्ति और तरुणों की स्फूर्ति बनकर प्रकट हुई। छपते ही अनेक पुरस्कारों से पुरस्कृत होकर कण्ठ-कण्ठ में गूँजने लगी।" (*आधुनिक कवि*-17)

श्यामनारायण पाण्डेय की रचनात्मक प्रतिभा के विकास में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी का बहुत बड़ा योगदान है। सन् 1924-25 में वे 'हरिऔध' जी के सम्पर्क में आये। उस समय जब पाण्डेय जी ने हरिऔध जी को अपनी तुकबन्दियाँ दिखायीं तो वे बहुत प्रभावित नहीं हुए, बल्कि यह भी कह दिया—"इन पंक्तियों में कुछ नहीं है। कोई दूसरा काम करो और मेहनत से पढ़ो।" पाण्डेय जी बहुत दुखी हुए। हॉस्टल आकर काफ़ी आत्म-चिन्तन किया और तय किया कि वे अच्छी कविता की रचना करके ही दम लेंगे। उन्होंने हरिऔध जी में अपनी पूरी निष्ठा बनाये रखी और अपने काव्याभ्यास में लगे रहे, जिसका परिणाम यह हुआ कि हरिऔध जी ने जल्दी ही इनकी काव्य-प्रतिभा से प्रभावित

होकर इन्हें न केवल प्रोत्साहित किया, बल्कि इन्हें काव्य-रीति का सम्यक् ज्ञान भी कराया। उनके सम्पर्क से श्यामनारायण पाण्डेय की काव्यभाषा भी मँजकर निखर आयी। इस तरह हरिऔध जी ने श्यामनारायण पाण्डेय के काव्य-गुरु के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाकर उन्हें कविता के सही मार्ग पर अग्रसर किया।

हरिऔध जी के अतिरिक्त श्यामनारायण पाण्डेय को जिन विभूतियों ने प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया है उनमें पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी, ठाकुर शहज़ाद सिंह और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी ने ही *हल्दीघाटी* से प्रभावित होकर इसके प्रकाशन की व्यवस्था करायी थी। गोरखपुर के एक कवि-सम्मेलन में जब आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्यामनारायण पाण्डेय की कविता सुनी तो उन्होंने न केवल इनकी प्रशंसा की, बल्कि *जौहर* की रचना के लिए आदेशात्मक प्रेरणा भी दी। कहना चाहिए कि *जौहर* लिखकर श्यामनारायण पाण्डेय ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की इच्छा की पूर्ति की है।

कहा जा चुका है कि श्यामनारायण पाण्डेय की आरम्भिक कविता सामान्य तुकबन्दियों से शुरू हुई। धीरे-धीरे उसमें विकास और परिष्कार हुआ और कुछ काल के बाद वह राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना की प्रबल धारा की संवाहिका बन गयी। आरम्भ में श्यामनारायण पाण्डेय ने स्फुट रीति से विविध भावोंवाली कविताएँ लिखीं, जिनमें आध्यात्मिकता, देशभक्ति और जीवन के दुःख-सुख की भावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। ऐसी कविताएँ बाद में (सन् 1946) *आरती* नामक संग्रह में प्रकाशित हुईं। *हल्दीघाटी* (1939 ई.) और *जौहर* (1944 ई.) के बाद *आरती* का प्रकाशन किसी को खटक सकता है। इस सन्दर्भ में यह ध्यान में रखना जरूरी है कि सामान्यतया किसी भी कवि की ख्याति के बाद ही उसकी प्रारम्भिक कविताओं का प्रकाशन हो पाता है। आरती के पहले उनकी दो छोटी-छोटी काव्य-पुस्तकें भी प्रकाशित हुई थीं—*आँसू के कण* (1932 ई.) और *रिमझिम* (1934 ई.)। ये दोनों रचनाएँ क्रमशः माता और 'हरिऔध' जी के निधन पर लिखी गयी थीं। बाद में इन्हें भी *आरती* संग्रह में संकलित कर दिया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने *माधव* नाम की इनकी एक छोटी काव्य-पुस्तक का उल्लेख किया है, किन्तु वह उपलब्ध नहीं है।[1]

रचनाओं के प्रकाशन-काल-क्रम के अनुसार पाण्डेय जी की निम्नलिखित रचनाएँ हैं—

1. *तुमुल* (1928 ई.);
2. *हल्दीघाटी* (1939 ई.);
3. *जौहर* (1944 ई.);
4. *आरती* (1946 ई.);

---

1. *हिन्दी साहित्य का इतिहास*—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—पृ. 634 (तेरहवाँ संस्करण)

5. *रूपान्तर* (अनुवाद ग्रन्थ) (1948 ई.);
6. *जय हनुमान* (1956 ई.);
7. *गोरा वध* (1956 ई.);
8. *शिवाजी* (1970 ई.);
9. *बालिवध* (1975 ई.);
10. *वशिष्ठ* (1975 ई.);
11. *परशुराम* (1985 ई.)।

उपर्युक्त ग्रन्थ-सूची को देखने पर यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि श्यामनारायण पाण्डेय की काव्य-साधना भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष के समय से लेकर स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद कई वर्षों तक अनवरत रूप से चलती रही हैं। स्वदेश, स्वधर्म, स्वजाति और संस्कृति का प्रेम तथा स्वाभिमान, स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता का उच्च एवं ओजस्वी स्वर उनकी कविताओं में भरा हुआ है। उन्होंने अपनी 'आत्म-निवेदन' कविता में आत्म-परिचय देते हुए लिखा है—

मैं वीर काव्य का अन्धड़ हूँ तूफ़ान बवण्डर हूँ
लेकिन अपनी मर्यादा की सीमा के अन्दर हूँ।

मैं काँटों के घर में फूलों का हार बनाता हूँ।
साहित्य-देवता के चरणों पर उसे चढ़ाता हूँ।

मैं किसी वाद के साथ हवा में बहका-उड़ा नहीं
मैं संघर्षों के बीच पला पर घिसकर मुड़ा नहीं।

मैं आर्य-धर्म का वीर पुजारी अलग अकेला हूँ
चाहे कोई कुछ कहे मगर सबके मुँह मेला हूँ।

सर-सरिताओं से प्यार मुझे, मैं अगम समन्दर हूँ।

× × ×

कविता ने मुझको बाँध लिया रंगीन भुजाओं में
रस सराबोर हो गया अहं रख माँ के पाँवों में।
तब से छन्दों में अपनी ही तसवीर बनाता हूँ
इतिहासों में सोये वीरों को पुनः जगाता हूँ।

संस्कृत जन को वश में कर लेता मोहक मन्तर हूँ।
लेकिन अपनी मर्यादा की सीमा के अन्दर हूँ॥

कहना न होगा कि वीर काव्य का यह 'अन्धड़ कवि' सदा 'अपनी मर्यादा की सीमा के अन्दर' रहकर जीवन-पर्यन्त आर्य-धर्म का वीर पुजारी बना रहा और विभिन्न साहित्यिक वादों से दूर रहकर अपनी कविता में सतत् इतिहास के सोये

हुए वीरों को जगाकर भारतीय जनता में वीरता और राष्ट्रीयता का ओज भरता रहा।

आरती

प्रकाशन-काल की दृष्टि से भले ही *आरती* संग्रह बाद में प्रकाशित हुआ हो, किन्तु वह श्यामनारायण पाण्डेय की आरम्भिक काव्य-चेतना की परिचायक है। *आरती* संग्रह की कविताएँ कवि के कौमार्य और यौवनकाल की कविताएँ हैं। उनमें विषयगत विविधता तो है ही, छन्द और शैली की भी विविधता है। उन कविताओं में कहीं कवि का प्रकृति के प्रति अनुराग व्यंजित हैं, कहीं आध्यात्मिकता और रहस्यात्मकता है और कहीं जीवन-संघर्ष से उद्‌भूत आशा-निराशा और सुख-दुख के द्वन्द्व और विषाद। इन्हीं के बीच राष्ट्रीय भावना, संस्कृति-प्रेम, स्वाभिमान और स्वाधीनता-संघर्ष का ओजस्वी स्वर भी निनादित है। कहना चाहिए कि *आरती* की कविताओं में कवि ने अपने जीवनानुभवों और तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों से उद्‌भूत मनोभावों को स्फुट कविताओं और गीतों में अभिव्यक्त किया है।

जिस समय श्यामनारायण पाण्डेय ने काव्य-रचना आरम्भ की, उस समय यद्यपि खड़ी बोली काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी थी, किन्तु ब्रजभाषा में काव्य रचना की प्रवृत्ति एकदम समाप्त नहीं हुई थी। उस समय के खड़ी बोली के अनेक महत्त्वपूर्ण कवियों ने भी अपनी आरम्भिक कविताएँ ब्रजभाषा में ही लिखी थीं। उसी तरह पाण्डेय जी ने भी ब्रजभाषा में कवित्त-सवैया शैली में भी काव्य-रचना की है; जैसे—

देखती हौं पथ पीतम के कतहूँ सो न आवत मोर पिया रे।
'पी कहाँ' बोलि करै जो दरै जियरा निदरै पपिहा पपिया रे॥
'श्याम' जरै हियरा हहरै, छतिया पै बरै, दिन रात दिया रे।
जाऊँ कहाँ, सुख पाऊँ कहाँ, कतहूँ नहिं मानत मोर जिया रे॥

—*आरती*, पृ. 168.

ब्रजभाषा में श्यामनारायण पाण्डेय की कुछ ही कविताएँ हैं। *आरती* संग्रह की अधिकांश कविताएँ खड़ी बोली में हैं और उन पर द्विवेदीयुगीन कविता की गहरी छाप है।

आरती संग्रह की कविताओं में कवि की आध्यात्मिक भावना की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है। यह आध्यात्मिकता उसे अपनी धर्मपरायणा माता से संस्कार के रूप में मिली है। कवि ने अनेक कविताओं में राम, कृष्ण और ब्रह्म के प्रति अपनी प्रीति, श्रद्धा और आस्था की अभिव्यक्ति करते हुए आत्मोद्धार की प्रार्थना की है। कृष्ण के प्रति कवि का विशेष अनुराग है, वह उनका दास होने के लिए आतुर है,

उनके साथ वह अपना अनन्य सम्बन्ध भी मानता है—

चातक तुम्हारे प्रेम-स्वाति बिन्दु का हूँ बना
मधुप तुम्हारे पदकंज का विभोर हूँ।
हो जो कुसुमाकर तो कोकिल मुझे भी कहो
तुम जो रसीले घनश्याम हो तो मैं मोर हूँ।
हो तुम दिवाकर तो जान लो मुझे भी कंज
मोहन तुम्हारे मुख-चन्द का चकोर हूँ॥

—*आरती*, पृ. 13.

और वह प्रार्थना करता है—

अहे घनश्याम अब मुझको बना लो दास
लालसा लगी है, मुझे दास कहलाने की

वह सम्पूर्ण संसार को भी प्रभुमय ही देखता है—

गगन नहीं है यह नीलम तुम्हारा शीश
मोती अलकों में गुथे हैं उगे न तारे हैं।
बहता न वायु यह श्वास ले रहे हो तुम
मन्द-मन्द हास है, न सुमन सँवारे हैं॥

—*आरती*, पृ. 9.

आरती की कुछ कविताओं में कवि ने अपनी वैयक्तिक प्रणयानुभूति की भी गीतात्मक अभिव्यक्ति की है। उसके प्रणय-निवेदन में यौवनावस्था की उद्दामता और प्रिय-मिलन की आतुरता घनीभूत रूप में व्यक्त हुई है। मधुयामिनी की मधुर बेला में मधुमिलन की कल्पना से पुलकित हृदय की दशा का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

कह रहा सच, आज के पहले पुलकता उर नहीं था।
आ रही मधुयामिनी के संग मिलन की मधुर बेला॥

—*आरती*, पृ. 58.

कभी-कभी वह अपनी प्रिया से बड़ी आत्मीयता से पूछता है—

प्यार से भुज पाश क्या मेरे गले में डाल दोगी ?

× × ×

चाँद का घूँघट हटा क्या मुस्कराकर बोल दोगी ?

यह प्रश्न वह इसलिए कर रहा है, क्योंकि—

गुदगुदाता है मुझे यह आज का शृंगार तेरा॥

ऐसी ही घड़ी में वह प्रणय की भीख भी माँगता है—

प्रणय-भिक्षा माँगता हूँ, आज मैं निर्धन, धनी तू।

प्रेम में संयोग और वियोग की दशाएँ चलती रहती हैं। प्रेमी कभी मिलन की कल्पना से विह्वल होता है, कभी विरह की व्यथा से व्याकुल। श्यामनारायण पाण्डेय का अपनी पहली पत्नी से इतना प्रगाढ़ प्रेम था कि वे उनके निधन से उत्पन्न दुख को झेलने में असमर्थ हो गये। उन्होंने अनेक कविताओं में पत्नी-वियोग से उत्पन्न व्यथा को कई तरह से व्यक्त किया है। प्रिया के वियोग में कभी उन्हें एक दिन एक युग की तरह व्यतीत होता हुआ प्रतीत होता है और कभी पूरी प्रकृति उन्हें प्रिया की याद दिलाकर उनके हृदय में गहरी पीड़ा जगा देती है—

1. एक युग का एक दिन है,

× ×

इस तरह मेरे हृदय में वेदना जलती प्रखरतर है
आज मेरी भू मलिन है, आज मेरा नभ मलिन है।

—पृ. 60-61

2. पवन जब प्रात का चलता कली कल हास करती है।
निशा जब अरुण किरणों से उषा की माँग भरती है।
विवाहित नव वधू-सी जब अरुणिमा मुस्कराती है।
हृदय में पीर उठती है, तुम्हारी याद आती है।

—पृ. 132

आरती संग्रह में ही उनकी वीरभावनावाली कुछ स्फुट कविताएँ भी संकलित हैं, जिनमें देशोद्धार, आत्मबलिदान, युद्धोत्साह और राष्ट्रीयता की पूतभावना भरी हुई है। व्यक्तिगत दुख-सुख की सीमा से बाहर निकलकर जब कवि ने अपने देश और समाज की हालत पर दृष्टिपात किया तो उसे प्यार, अभिसार आदि व्यर्थ प्रतीत होने लगा। किसानों पर हो रहे बर्बर अत्याचारों और भूखे-नंगों की करुण चीत्कार ने कवि को तलवार उठाने के लिए तैयार कर दिया—

प्रियतम, चलो चलें उस पार।
तजौ वासना का अब प्यार॥
बरस रहे हों आसमान से दीन किसानों पर अंगार।
जहाँ लोग भूखे मरते हों और मचा हो हाहाकार।
असहायों की गर्दन पर दुश्मन की फिरती हो तलवार॥
बलिवेदी पर चढ़ें, देश का भी कुछ हो जाए उद्धार।
ले लो हाथों में तलवार, करना है माँ का उद्धार॥

—*आरती*, पृ. 90

उस समय भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष तेज़ी पर था। श्यामनारायण पाण्डेय ने स्वातन्त्र्य-समर में सोत्साह भाग लेने के लिए भारतीय जनता को प्रेरित किया और महिषासुरमर्दिनी से उन्होंने वीरता के निराले भाव को अपने अन्तस् में भर देने की प्रार्थना की, ताकि वे 'वीर' और 'विजेता' बन सकें–

अम्ब, तू दिखा के, वरखा के, वारिवाहक से,
भव के निराले भाव, मानस में भर दे।
लोग वीर नेता कहें, विश्व में विजेता कहें
ऐसा तू हमारे बाहुबल में असर दे॥

–*आरती*, पृ. 99

उन्होंने उस समय के युवकों को महाराणा प्रताप और वीर शिवाजी से प्रेरणा लेकर देशोद्धार के लिए आगे बढ़ते रहने का सन्देश दिया–

जान को हथेली पर रख के पढ़ाया मन्त्र
राणा का पढ़ाया वह, मन्त्र पढ़ते चलो।
सूरमा शिवाजी का, नाड़ियों में दौड़ता है खून
क्यों न फिर चौगुनी कला से बढ़ते चलो।
साहस बढ़ा के भौंह सिंह-सी चढ़ा के सदा
युवक, हमारे तुम, आगे बढ़ते चलो॥

ऐसे समय में उन्होंने भारतीय नवयुवकों को उस समय के क्रान्तिकारियों और शहीदों के बलिदान का स्मरण कराते हुए उन्हीं के पदचिह्नों पर चलने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने 'मेरे शहीद तुम चिरंजीव' कविता लिखकर हक़ीक़त राय, यतीन्द्रनाथ, चन्द्रशेखर आज़ाद, गणेश शंकर विद्यार्थी, भगत सिंह, ऊधम सिंह, सुभाषचन्द्र बोस आदि की क़ुर्बानियों का जो मार्मिक स्मरण किया है, वह स्वतन्त्रता-प्रेमियों और राष्ट्रभक्तों के चित्त में आत्मोत्सर्ग का उदात्त भाव भरने में काफ़ी सक्षम है। शहीद गणेश को याद करते हुए कवि ने उनके उत्सर्ग का मार्मिक, किन्तु ओजस्वी चित्र प्रस्तुत किया है–

रख दिया शीश तलवारों पर, थे कूद पड़े अंगारों पर।
थी एक लगन, था एक ध्येय, सो गये रक्त-फौहारों पर।
मेरे गणेश तुम चिरंजीव, मेरे शहीद, तुम चिरंजीव॥

–*आरती*, पृ. 85.

श्यामनारायण पाण्डेय ने देश-भक्ति के गीतों से भारतीय जनता में स्वदेश प्रेम, आत्मोत्सर्ग और त्याग-तप का पवित्र भाव भरा और उसे क्रान्ति के पथ पर सोत्साह अग्रसर किया। उनके देश-प्रेम और स्वातन्त्र्य-भावना के गीतों को पढ़-सुनकर

भारतीय जनता उन्हीं की तरह विदेशी शासकों को चुनौती देती हुई संघर्ष-पथ पर चल पड़ी—

> बन के कराल वक्र व्याल डस लेंगे कहीं,
> तेज हर लेंगे बने वीरव्रत धारी हैं।
> खादी पहनेंगे मसलेंगे तुम्हें पैरों तले,
> औरों से तुम्हारे लिए लाते महामारी हैं।
> जिसके लिए हैं उठ लेंगे देख लेना वही,
> कहते हमीं को महाकाल क्रान्तिकारी हैं।
> गोले सहेंगे, दहलेंगे पर छाती को
> जानते नहीं हो हम देश के पुजारी हैं।

—*आरती*, पृ. 160.

कहना न होगा कि *आरती* के वीररस प्रधान गीतों ने स्वातन्त्र्य-समर के सेनानियों और युवकों को अपरिमित उत्साह, ओज और तेज से भर दिया। मातृभूमि की मुक्ति के लिए संघर्षरत जनता एक स्वर से बोल उठी—

> तोड़ेंगे हाँ तोड़ेंगे अब तोड़ेंगे जननी की कड़ियाँ।
> चालीस कोटि जनों के सिर की पग पर रहती पड़ी पगड़ियाँ।

—*आरती*, पृ. 89.

आरती संग्रह की देशोद्धार और स्वातन्त्र्य भावना से भरी हुई इन कविताओं ने ही श्यामनारायण पाण्डेय की *हल्दीघाटी* और *जौहर* जैसे महाकाव्यों की वह आधारभूमि तैयार की है, जिस पर उन्होंने राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का भव्य एवं उदात्त काव्य-संसार निर्मित किया है, जिसके लिए वे आधुनिक हिन्दी काव्यधारा में पृथक् रूप से जाने-पहचाने जाते हैं।

तुमुल

पहले यह *त्रेता के दो वीर* नाम से प्रकाशित हुई थी। बाद में 1928 ई. में इसे *तुमुल* नाम से प्रकाशित किया गया। यह एक सर्गबद्ध खण्डकाव्य है। इसमें 19 सर्गों में लक्ष्मण और मेघनाथ के पौराणिक युद्ध का प्रबन्धात्मक वर्णन हुआ है। इसके प्रथम सर्ग में लक्ष्मण के गुणों का वर्णन है, द्वितीय में मेघनाद की प्रशंसा की गयी है, तृतीय में राम द्वारा युद्ध में करोड़ों वीरों के संहार का वर्णन है। इसी सर्ग में मकराक्ष के वध और उससे भयभीत रावणी सेना के भय और पुत्र-वध से दुखी रावण की चिन्ता का चित्रण हुआ है। चतुर्थ सर्ग में रावण के पुत्रशोक का विस्तृत निरूपण हुआ है। पंचम सर्ग में रावण मेघनाद के समक्ष अपनी व्यथा को प्रस्तुत करके उसे

लक्ष्मण से युद्ध करने के लिए तैयार करता है। षष्ठ सर्ग में मेघनाद लक्ष्मण के वध की प्रतिज्ञा करता है, सप्तम सर्ग में वह युद्ध हेतु प्रयाण करता है और अष्टम सर्ग में वसुन्धरा को निवीर्य करने की घोषणा करता है। नवम सर्ग में लक्ष्मण मेघनाद की ललकार को सुन युद्ध-स्थल की ओर प्रस्थान करते हैं, दशम सर्ग में लक्ष्मण-मेघनाद के बीच पारस्परिक प्रशंसा से भरा हुआ वार्तालाप होता है। लक्ष्मण मेघनाद के गुण, यश और कीर्ति की प्रशंसा करते हुए यह भी कह देते हैं–

आके आँखों से तुझे देख के तो
इच्छा होती युद्ध की ही नहीं है।
कैसे तेरे साथ मैं लड़ूँगा
कैसे बाणों से तुझे मैं हतूँगा॥

एकादश सर्ग में मेघनाद भी अपनी प्रशंसा के उत्तर में लक्ष्मण की प्रशंसा करता है, किन्तु तुरन्त सचेत होकर उन्हें युद्ध के लिए ललकारता है। द्वादश सर्ग में लक्ष्मण मेघनाद के साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो जाते हैं और शत्रु-सेना पर कहर बरपा कर देते हैं, जिससे वह भयभीत होकर भाग खड़ी होती है। उस समय मेघनाद भागती सेना को धिक्कारता हुआ कहता है–

बैरी बली विकराल पाकर, भागना क्या चाहिए।
वीरों भला इस भाँति रण को त्यागना क्या चाहिए॥
कापुरुषता पर तुम सबों को, कोटिशः धिक्कार है।
तुम पामरों की चाल पर, लानत करोड़ों बार है॥

वह उनसे पूछता है–

आतंक से जाते बचा के प्राण हो मूर्खों अरे।
भगकर बताओ काल से घर पर मरे तो क्या मरे॥

इसके बाद लक्ष्मण और मेघनाद के बीच भयंकर युद्ध होता है और मेघनाद के शक्ति-बाण से लक्ष्मण मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं। त्रयोदश सर्ग में इस घटना से राम की सेना में खलबली मच जाती है। सेना में शोक व्याप्त हो जाता है। चतुर्दश सर्ग में मूर्च्छित लक्ष्मण को देखकर राम भी शोक-विह्वल हो उठते हैं। षोडश सर्ग में सुषेण वैद्य की सलाह पर हनुमान जी संजीवनी बूटी ले आते हैं। लक्ष्मण की मूर्छा दूर हो जाती है। सप्तदश सर्ग में जामवन्त राम से जग, जीव और माया से सम्बन्धित अनेक प्रश्न पूछते हैं। राम उन्हें सभी प्रश्नों के उत्तर दे ही रहे होते हैं कि विभीषण उनके पैरों पर आकर गिर पड़ता है और निकुम्भिला में यज्ञ कर रहे मेघनाद को मारने की सलाह देता है। अष्टादश सर्ग में लक्ष्मण अपने दल के साथ जाकर मेघनाद के यज्ञ का विध्वंस करके उसका वध कर डालते हैं। एकोनविंश सर्ग में राम-लक्ष्मण

के शौर्य की प्रशंसा करते हैं, किन्तु लक्ष्मण अपनी विजय को राम की ही कृपा का फल कहकर मौन हो जाते हैं। इस तरह उन्नीस सर्गों में लक्ष्मण और मेघनाद की वीरता और कीर्ति का वर्णन करके कवि ने लक्ष्मण को लोकमंगलकारी आदर्श पुरुष के रूप में चित्रित किया है और लिखा है—

पर दुख से उद्विग्न पर सुख देख होते हर्ष में।
ऐसे जनों का सर्वदा हो जन्म भारतवर्ष में॥

प्रस्तुत खण्डकाव्य में श्यामनारायण पाण्डेय का उद्देश्य केवल त्रेता के दो वीरों—लक्ष्मण और मेघनाद—के भीषण युद्ध का चित्रण करना नहीं है, बल्कि इसके द्वारा स्वातन्त्र्य-समर-रत भारतीय जनता में निर्णायक युद्ध का भाव जागृत करना है। लक्ष्मण और मेघनाद का युद्ध सत् और असत्, धर्म और अधर्म का युद्ध है। इस युद्ध में लक्ष्मण की विजय का चित्रण करके कवि ने सत्य और धर्म के साथ-साथ लोकमंगल की पुनीत भावना की विजय दिखायी है और यह स्थापित किया है कि सत् के लिए, धर्म के लिए तथा लोकमंगल के लिए शत्रु का येन-केन वध उचित है, वरेण्य है। लक्ष्मण ने मेघनाद को मारने में जिस रीति-नीति से काम लिया, वह धार्मिक रीति-नीति के विरुद्ध थी। उन्होंने उसे उस समय मारा, जब वह यज्ञ कर रहा था। सामान्य दृष्टि से यह उचित नहीं था, किन्तु कवि की दृष्टि में वह कार्य सर्वथा उचित था, क्योंकि—

जो हैं अधर्मी नीच उनको, दण्ड देना धर्म है।
दुष्कर्म-निरतों को क्षमा करना महादुष्कर्म है॥

—*तुमुल*, पृ. 111.

किसी कर्म की पवित्रता-अपवित्रता का निर्णय करने की कसौटी व्यापक लोकमंगल ही है। जिस कार्य का परिणाम लोकमंगल हो, वही धर्म है और जिस कार्य से लोक का अमंगल हो, वह अधर्म है। अतः निःशस्त्र और यज्ञरत मेघनाद का वध सामान्य दृष्टि से उचित न होते हुए भी लोकमंगल की दृष्टि से समीचीन है—

जिस कर्म का परिणाम शुभ हो, वह सनातन धर्म है।
जिस कर्म का फल ही अशुभ हो, वह विश्वनिंद्य अधर्म है॥

—*तुमुल*, पृ. 110.

स्पष्ट है कि कवि ने इस खण्डकाव्य में व्यापक लोक-मंगल को ध्यान में रखकर अत्याचारी को किसी भी तरह विनष्ट करने की नीति का समर्थन किया है। ऐसे तप द्वारा अर्जित बल का क्या लाभ, जो दुराचार के लिए हो, ऐसे तपःदूत कौशल का क्या प्रयोजन, जो निर्बलों पर कहर ढाता हो और ऐसी तपःसिद्धि की क्या सार्थकता, जो दुष्कर्म के निमित्त हो। राम ने सीता की मुक्ति के लिए रावण से युद्ध

छेड़ा था। रावण द्वारा सीता-हरण सर्वथा निन्दनीय कर्म था, किन्तु मेघनाद रावण की ओर से युद्ध कर रहा था और उसी की सफलता के लिए यज्ञ भी कर रहा था। ऐसी स्थिति में लक्ष्मण द्वारा उसके यज्ञ का विध्वंस और उसका वध उचित ही था, क्योंकि 'लोकेषणा शान्ति चाहती थी, मेघनाद का शौर्य नहीं। इसीलिए किसी तरह उसको मारना किसी भी लोककल्याण के लिए चिन्तित व्यक्ति को अनिवार्य था।'[1] कहा जा सकता है कि लोककल्याण के लिए चिन्तित लक्ष्मण ने वही कार्य किया, जो उन्हें करना चाहिए था। *तुमुल* में लक्ष्मण और मेघनाद क्रमशः सत् और असत्, धर्म और अधर्म के प्रतीक हैं। मेघनाद का वध और लक्ष्मण की विजय असत् पर सत् की और अधर्म पर धर्म की विजय है। कहना न होगा कि तुमुल काव्य के इस सन्देश ने भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष के सेनानियों को अत्याचारी अंग्रेज़ी शासन को जैसे-तैसे उखाड़ फेंकने के लिए अवश्य कटिबद्ध किया होगा।

हल्दीघाटी और जौहर

हल्दीघाटी और *जौहर* श्यामनारायण पाण्डेय की दो अमर कृतियाँ हैं। ये दोनों उनकी अक्षयकीर्ति का आधार भी हैं। इन रचनाओं से उन्हें हिन्दी जगत् में अपार लोकप्रियता ही नहीं मिली, वरन् वीरभावना और राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के महान कवि के रूप में उन्हें स्थायी महत्त्व भी मिला।

हल्दीघाटी श्यामनारायण पाण्डेय के यौवनकाल की रचना है। उनकी सूचना के अनुसार यह उनकी सात वर्षों की सतत् साहित्य-साधना का फल है, जो सन् 1939 में 'जनता की आकांक्षा की पूर्ति' और 'तरुणों की स्फूर्ति बनकर प्रकट हुई'। उन्होंने लिखा है कि 'छपते ही (यह) अनेक पुरस्कारों से पुरस्कृत होकर कण्ठ-कण्ठ में गूँजने लगी।' उनकी दृष्टि में, "इसके छलकते छन्दों में वीरता की गर्जना और भीतर प्रखर राष्ट्रीयता की हुंकार है। हल्दीघाटी ऐतिहासिक गौरव की प्रकाशिका तथा अपने समय के अनेक संघर्षों से प्रभावित आर्य-संस्कृति की उपासिका है। यह स्वातन्त्र्य-संग्राम और सर्वस्व बलिदान की कहानी का नाम है।" (*आधुनिक कवि*-17)

इसी तरह *जौहर* भी उनका ऐतिहासिक महाकाव्य है, जो सन् 1944 में उस समय प्रकाशित हुआ, जब कवि की पत्नी गायत्री देवी का असमय और दुखद निधन हुआ। उसे स्मरण करते हुए कवि ने लिखा है—"*जौहर* के उद्‌भव में तुम्हारा मिलन, निर्माणकाल तक तुम्हारा सहयोग और अन्तिम छन्द लिखते-लिखते तुम्हारा महानिर्वाण, एक साथ मेरे हृदय में अग्निबाण की तरह चुभ गये हैं।" यह एक अजीब संयोग है कि महारानी पद्मिनी के सतीत्व की गौरवगाथा को अंकित करनेवाले

---

1. तुमुल-प्रार्थना, पृ. 5.

महाकाव्य की समाप्ति के साथ ही उसके प्रणेता की प्राणप्रिया का भी निधन हो गया। कवि का विश्वास है कि उसकी वह साधुप्रिया भी सती की 'जौहर-ज्वाला' में ही समा गयी है—

जौहर समाप्त होते ही
मिल सतियों की माला में।
उसकी वह साधुप्रिया भी
कूदी 'जौहर' की ज्वाला में।

—*जौहर*, पृ. 192.

कवि ने यह भी स्वीकार किया है कि *जौहर* के अनेक छन्दों में उसकी दिवंगता पत्नी की अनुभूतियाँ, स्वीकृतियाँ और स्त्री-सुलभ कोमल भावनाएँ समाहित हैं। इससे यह विदित होता है कि *जौहर* की रचना में कवि की पत्नी का भी आन्तरिक सहयोग रहा है और इस काव्य के अनेक प्रसंगों में उसने अपनी पत्नी से काफ़ी विचार-विमर्श भी किया है।

हल्दीघाटी और *जौहर* के रचना-उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कवि ने लिखा है—"*हल्दीघाटी* लिखकर मैंने जनता के सामने एक भारतीय वीरपुरुष का आदर्श रखा और *जौहर* लिखकर एक भारतीय सती नारी का; इसलिए नहीं कि कोई छन्दों के प्रवाह में झूम उठे, बल्कि इसलिए कि भारतीय पुरुष 'प्रताप' को समझें और भारतीय नारियाँ 'पद्मिनी' को पहचानें।" उल्लेखनीय है कि जिस समय इन दोनों महाकाव्यों की रचना हुई, उस समय भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष अपनी चरम सीमा पर था। ऐसे समय में भारतीय इतिहास के गौरवशाली चरित्रों को ओजपूर्ण छन्दों में ढालकर कवि ने भारतीय जनता को अपने देश, जाति, धर्म और संस्कृति की रक्षा करने के लिए उदात्त प्रेरणा दी। यही वजह है कि ये दोनों कृतियाँ छपते ही जनता के गले का हार बन गयीं। चूँकि ये दोनों कृतियाँ श्यामनारायण पाण्डेय की महान कृतियाँ हैं, इसलिए अगले अध्याय में इन पर विशद् प्रकाश डाला जाएगा।

जय हनुमान

दो बड़े ऐतिहासिक महाकाव्यों की रचना के बाद श्यामनारायण पाण्डेय ने पौराणिक कथा पर आधारित *जय हनुमान* नामक खण्डकाव्य की रचना की। यह रचना सन् 1956 में प्रकाशित हुई। इसमें रामकथा के एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग—हनुमान द्वारा सीता की खोज और लंकादहन—का बड़ा ही ओजपूर्ण वर्णन हुआ है। इस रचना से हनुमान-चरित का परम तेजस्वी और वीरतापूर्ण स्वरूप प्रकाशित हुआ है। कवि ने यद्यपि पारम्परिक हनुमान-चरित में कोई परिवर्तन नहीं किया है, किन्तु उसकी प्रस्तुति में युगानुकूलता और नवीनता का स्वाभाविक समावेश अवश्य हो गया है।

जय हनुमान रामदूत हनुमान की यशोगाथा है। इसकी कथा सात छोटे-छोटे सर्गों में क्रमबद्धता एवं आवेगपूर्ण प्रवाहमयता के साथ वर्णित है। कथा इस प्रकार है। सीता की खोज में निकले बन्दरों-भालुओं की सभा में जब समुद्र-सन्तरण को लेकर विचार-विमर्श हो रहा था, तब जामवन्त ने हनुमान जी को उनके पूर्व जीवन के महान कार्यों की स्मृति दिलाकर उन्हें समुद्र-पार जाकर सीता का पता लगाने के लिए प्रेरित किया। जामवन्त के उद्‌बोधन से हनुमान जी को अपने विस्मृत बल-पौरुष का स्मरण हो आया। वे तुरन्त पर्वताकार रूप धारण करके आसमान में उड़ चले। रास्ते में सुरसा ने विशाल मुँह फैलाकर उन्हें खाना चाहा तो वे सूक्ष्म रूप धारण करके उसके कर्णछिद्र से बाहर आ गये, उसके बाद सिंहिका ने जब उनकी परछाई को लौह-शृंखला की तरह जकड़ लिया तो उन्होंने उसके पेट को फाड़कर उसके मृत शरीर को समुद्र में फेंक दिया। इसके बाद लंका में पहुँचकर उन्होंने सीता की खोज की। लंकिनी नाम की राक्षसिनी ने उन्हें बताया कि सीता अशोक वाटिका में हैं। सोने की लंका का निरीक्षण करके हनुमान जी अशोकवाटिका पहुँचे। वहाँ उन्होंने प्रिय-विधुरा, दीन-हीन-मलीन सीता को एक अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई देखा। उनका हृदय करुणा से भर उठा। उसी समय रावण ने आकर सीता को अपनी प्रिया बनाने के लिए पहले काफ़ी समझाया-फुसलाया। सीता ने जब उसके प्रत्युत्तर में उसकी काफ़ी भर्त्सना की तो वह उन्हें डरा-धमकाकर चला गया। जाते-जाते उसने उपस्थित राक्षसियों से कहा कि तुम सब इसे उत्पीड़ित करके मेरे प्रस्ताव को मानने के लिए बाध्य करो। यदि दो महीने के भीतर यह मेरी बात नहीं मानेगी तो मैं इसका जीवन समाप्त कर दूँगा। रावण के चले जाने पर त्रिजटा ने लंका-विध्वंस सम्बन्धी अपने स्वप्न का वर्णन करके राक्षसियों से सीता की चरण-वन्दना करके घर चले जाने के लिए कहा। जब वे सब चली गयीं, तब हनुमान ने अशोक वृक्ष के नीचे उतरकर सीता को अपना परिचय दिया। उन्होंने सीता के पूछने पर बालि वध और राम-सुग्रीव-मित्रता का वर्णन किया। बाद में उन्होंने सीता को राम की अँगूठी दी और विस्तार से राम की दशा का वर्णन किया। सीता ने हनुमान जी को अपनी चूड़ामणि दी और राम के लिए सन्देश देते हुए कहा—

ऐसा कहना जिससे मेरी
विपति कटे प्रभु-शरण मिले
मेरे तन-मन-जीवन के सब कुछ
रघुनायक चरण मिले।

हनुमान ने कहा—

कपि बोले माँ, धैर्य रखें
रावण मरने ही वाला है

रामबाण अविलम्ब जननि
सब दुख हरने वाला है।

हनुमान ने सीता से अशोकवाटिका के फलों को खाने की अनुमति माँगी। अनुमति मिल जाने पर उन्होंने फलों को खाया और पेड़ों को उखाड़ डाला। यह समाचार जब रावण को मिला तो उसने अपने पुत्र अक्षयकुमार को भेजा। हनुमान ने उसे मार डाला। उसके बाद मेघनाद आया। उसने युद्ध के दौरान ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। रावण से मिलने की इच्छा के कारण हनुमान उसमें बँध गये। रावण के दरबार में जब उन्हें प्रस्तुत किया गया और रावण ने उनसे उनका परिचय पूछा तो सब कुछ बतलाने के बाद उन्होंने उससे पूछा–

धर्म-कर्म के ज्ञाता आप
कैसे किया परस्त्री-हरण
यह तो बुध-जन-निन्दित कर्म
इसका फल है केवल मरण।

इस पर वह बहुत नाराज़ हुआ। उसने हनुमान को मार डालने का आदेश दे दिया, किन्तु उसी समय विभीषण ने 'दूत अवध्य होता है' यह व्यवस्था देकर उनके प्राणों की रक्षा कर ली और रावण को यह सुझाव दिया कि इसकी पूँछ में आग लगा दी जाए। रावण ने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया। हनुमान की पूँछ में वस्त्र लपेटकर उस पर घी-तेल डालकर आग लगा दी गयी। जलती हुई पूँछ के साथ हनुमान ने चारों तरफ़ कूद-कूदकर आग लगा दी, सोने की लंका धू-धूकर जलने लगी। लंका-निवासी जैसे-तैसे भागने लगे। कोई किसी का पुर्साहाल न रहा। लंकादहन करके हनुमान अपने साथियों के पास आ गये। उन्होंने उनको बताया कि राम की कृपा और आप लोगों के बल से मैंने सीता के पुण्य-चरणों का दर्शन कर लिया है। मैंने लंका नगरी को जलाकर राख कर दिया है। सबने हनुमान की जयकार की। राम से मिलकर उन्होंने सीता का समाचार सुनाया और कहा कि लंका में पापी रावण की वन्दिनी बनी सीता की मुक्ति में आप देर न लगायें। वे अब ज़्यादा दिनों तक नहीं जी सकेंगी। राम ने हनुमान के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा–

मैं न उऋण हो सकता तुम तो
देवों के वरदान बने।
मेरे प्राणों के रक्षक तुम
कपिदल के अभिमान बने॥

यह कहकर उन्होंने हनुमान को अपने वक्षस्थल से लगा लिया और सारी वानर सेना एक साथ बोल उठी–'जय हनुमान, जय रघुनायक!' चिर-परिचित एवं लोक-विश्रुत इस कथा को कवि ने बड़े कौशल से प्रबन्धात्मक रूप में प्रस्तुत किया

है। नयी भाषा-शैली के कारण कथा में नवीनता और रोचकता आ गयी है। हनुमान के शौर्य और पराक्रम को रेखांकित करते समय कवि का ध्यान उनकी विद्वत्ता, कर्तव्यनिष्ठा, रामभक्ति, अपरिमित बल-पौरुष और अजेयता पर विशेष रूप से केन्द्रित रहा है। जामवन्त ने हनुमान की प्रशंसा जिन शब्दों में की है, वे उपर्युक्त विशेषताओं की पुष्टि करते हैं–

'तुम तो संस्कृत के अधिकारी
प्रभु-रहस्य के ज्ञाता हो
सर्व शास्त्र-निष्णात साथ ही
मंत्रों के निर्माता हो।
गरुड़-पंख में जो बल है
वह बल है पुष्ट भुजाओं में
पवनदेव के सदृश वेग है
कठिन तुम्हारे पाँवों में।
वामन-सदृश त्रिलोक नाप
सकते हो यदि तुम चाहो तो
धरा उठाकर उड़ सकते हो
अपनी शक्ति जगाओ तो।

हनुमान ने जिस तरह समुद्र को पार किया, लंका में जैसा भीषण उत्पात मचाया और लंका-दहन करके जिस प्रकार की ध्वंस-लीला की, वह सब उनके अजेय बल-पौरुष की रोमांचक गाथा है। उसे रूपायित करने में कवि ने अनुकूल शब्द-योजना के साथ-साथ उपयुक्त छन्द-विधान भी किया है। लंका को जलाते समय हनुमान ने जो भीषण रूप धारण किया, उसकी एक छवि इन शब्दों में देखिए–

ज्वलन्त पुच्छ लाल थी सरोष वस्त्र लाल था
कपीश नेत्र लाल थे समग्र लाल-लाल था।
कपीश घूमने लगे सगर्व गेह-गेह पर
धधक उठे अंगार लाल लाल देह-देह पर।

कवि के पास दृश्य को साकार कर देनेवाली समर्थ भाषा भी है। जलती हुई लंका और भागते हुए राक्षसों का सजीव दृश्य निम्नलिखित छन्दों में साकार हो गया है–

गवाक्ष-द्वार जल गिरे प्रदीप्त धाय-धाय से
अवर्णनीय स्वर्ण के महल गिरे धड़ाम से
विहंग पिंजरस्थ चित्र पंख फड़फड़ा मरे
मृगादि निरपराध पशु तुरन्त हड़बड़ा मरे

सभा भवन जले धधक धधक अटारियाँ जलीं।
स्वकन्त को पुकारतीं अधीर नारियाँ जलीं।

अशोकवाटिका में बैठी सीता के चित्रण में कवि ने अपनी भाव-प्रवणता और सहृदयता का अच्छा परिचय दिया है। अशोक वृक्ष के नीचे बैठी सीता को हनुमान ने 'जल-कमलहीन वापी' और 'तम-घिरे प्रात की श्री-सी' देखा था। लंका में प्रवेश करते समय लंकिनी ने भी सीता का जो परिचय दिया है, वह कवि की भावुकता और सादृश्य-विधान की क्षमता का परिचायक है–

सीता अशोक वन में हैं
तरु-तले पड़ी छाया-सी
मेधा-सी मोह-निमग्ना
आपत्ति-भरी माया-सी।

जय हनुमान की कथा *रामचरितमानस* के 'सुन्दरकाण्ड' की ही कथा का खड़ी बोली में भिन्न शैली में रूपान्तर है, किन्तु दोनों में एक बहुत बड़ा फ़र्क़ यह है कि मानस की कथा पर भक्ति और अध्यात्म का रंग गहरा है, जबकि *जय हनुमान* की कथा में उक्त तत्त्वों के बावजूद वीररस की प्रधानता है। इस कथा के पाठ से पाठक या श्रोता में भक्ति की बजाय अनीति, अत्याचार, अधर्म और कदाचार के ख़िलाफ़ संघर्ष भाव उद्दीप्त होता है। 'श्रीरामदूत को प्रणाम' निवेदित करते हुए कवि ने भी यही इच्छा व्यक्त की है–

'वीर हनुमान से
अनेक बार याचना
बार-बार प्रार्थना
कि
मानव-समाज की अनीतियों को दूर कर
सफल बनाये
जन-जीवन जगाये
देश-जाति को उठाये
नित
जय हनुमान
यह।'

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देश नव-निर्माण की दिशा में अग्रसर हुआ था। ऐसे समय में सृजित कृति में देश-जाति के उत्थान की कामना सहज एवं स्वाभाविक है। ऐसा करके कवि ने देश के नवनिर्माण की प्रक्रिया में अपना योगदान दिया है और पौराणिक इतिवृत्त में नयी चेतना भरकर उसे प्रासंगिक बना दिया है।

गोरा वध

1956 ई. में ही श्यामनारायण पाण्डेय का एक और खण्डकाव्य प्रकाशित हुआ—*गोरा वध*। यह सात सर्गों का है। इसे *जौहर* महाकाव्य के *गोरा वध* वाले प्रकरण को किंचित् विस्तार देकर प्रकाशित किया गया है। इसमें गोरा नामक पात्र की वीरगति का वर्णन हुआ है। जब रानी पद्मिनी अलाउद्दीन ख़िलजी के पास सैनिकों की सात सौ डोलियों के साथ गयी थी, उस समय गोरा ने ख़िलजी की सेना के साथ घमासान युद्ध करके वीरगति पाई थी। इसी इतिवृत्त को कवि ने वीर और करुण रस से सिंचित करके प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ पर टिप्पणी करते हुए डॉ. उदयनारायण तिवारी ने लिखा है—"भारतीय दासता की कड़ियाँ अब टूट चुकी हैं और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के साथ-साथ युवकों में उत्साह की तरंगें उद्वेलित हो रही हैं। वस्तुतः किसी देश में वीर काव्य की रचना तभी होती है, जब देश स्वतन्त्र होता है। आशा है, भविष्य के कवि ऐसी रचनाओं के युवकों में उत्साह और जोश भरकर भारतीय राष्ट्र को सबल बनाने में सहायक होंगे।" (*वीरकाव्य*, पृ. 25)

गोरा का उत्सर्ग देश, धर्म तथा सतीत्व की रक्षा के लिए किया गया उत्सर्ग है। श्यामनारायण पाण्डेय ने इस उत्सर्ग को ओज और करुण भाव से परिपूर्ण करके इस रूप में प्रस्तुत किया है कि पाठकों और श्रोताओं में अनीति-अन्याय और अधर्म के ख़िलाफ़ युद्ध करने का उत्साह पैदा हो जाए।

शिवाजी

शिवाजी श्यामनारायण पाण्डेय का ऐतिहासिक इतिवृत्त पर लिखा गया तीसरा महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है। यह सन् 1970 में प्रकाशित हुआ। इसमें 25 सर्गों में छत्रपति शिवाजी के जन्म से लेकर सिंहगढ़ की विजय तक के उनके शौर्यपूर्ण कृत्यों और ऐतिहासिक विजयों का इतिहास-पुष्ट तथ्यों के आधार पर बड़ा ही ओजपूर्ण चित्रण हुआ है। इस महाकाव्य में शिवाजी का व्यक्तित्व लोकनायकत्व की गरिमापूर्ण छवि के साथ-साथ एक महान स्वतन्त्रता-संग्राम सेनानी, न्यायप्रिय शासक और स्वदेश, स्वधर्म तथा स्वजाति के उद्धारक और पोषक योद्धा के रूप में अंकित हुआ है। इस महाकाव्य की सर्गानुसार कथा इस प्रकार है—

प्रथम सर्ग में शिवाजी का जन्मोत्सव, द्वितीय सर्ग में दादा कोंणदेव की छत्रछाया में शिवाजी की अस्त्र-शस्त्र की दीक्षा, तृतीय सर्ग में शिवाजी का अपने पिता शाहजी के साथ बीजापुर दरबार में जाना, बीजापुर दरबार में आलमशाह के सामने 'कोर्निश' का ढोंग न करके अपने स्वाभिमानी व्यक्तित्व का परिचय देना, शिवाजी से सहमत होकर आदिलशाह का गो-वध बन्दी का आदेश देना, शिवाजी का धार्मिक, साहसिक और निर्भीक जीवन जीने का संकेत देना, सई बाई के साथ

शिवाजी का विवाह आदि वर्णित है। चतुर्थ सर्ग में शिवाजी और गुरु रामदास की भेंट-वार्ता का वर्णन है। इसी समय गुरु रामदास ने शिवाजी को स्वधर्म, स्वदेश और स्वजाति की रक्षा के लिए प्रेरित किया था। उन्होंने शिवाजी को युगीन धार्मिक, सामाजिक, प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक दशा का ज्ञान कराते हुए कहा था—

दुखी प्रजा होती दिन रात
धर्म हानि है अत्याचार।
अब न तनिक होता है सहन
भलेमानुषों का अपकार।

पक्षपात दूषित है न्याय
भूखों नंगों का चीत्कार।
शासक नाशक है स्वच्छन्द
कलह परस्पर दम्भ अपार।

सभी स्वार्थ से अन्धे हुए
ऊँच नीच का नहीं विवेक
देव मूर्तियाँ खण्डित हुईं
रहा न पावन मन्दिर एक

धर्महीन है अर्थ विषाक्त
बात-बात में जनसंघर्ष
चाटुकारिता में दिन बसर
जीवन में रह गया न हर्ष।

दारुण एवं असह्य परिस्थितियों की जानकारी देकर गुरु रामदास ने कहा था कि इनसे मुक्ति का एक ही रास्ता है कि तुम इनके विरुद्ध संघर्ष के लिए तैयार हो जाओ, क्योंकि देश, धर्म और जाति का मान-सम्मान अब तुम्हीं पर अवलम्बित है। इस धर्ममय रण में मैं हनुमान की तरह सदा तुम्हारे साथ रहूँगा। इतना कहकर उन्होंने 'भवानी' नाम की तलवार उन्हें समर्पित कर दी—

लो अभिमंत्रित यह तलवार
नाम भवानी खर-तर धार।
विजय रहेगी इसके साथ
देवदत्त दुर्लभ उपहार॥

गुरु रामदास के उद्‌बोधन से शिवाजी स्वदेश, स्वजाति और स्वधर्म की रक्षा के लिए विकल हो उठे—

शिवा स्वधर्म के लिए असह्य वर्ण हो उठे
शिवा स्वदेश के लिए ज्वलित सुवर्ण हो उठे
स्वजाति के लिए शिवा अपार बाहुवीर्य से
गुरु-प्रसाद शक्ति से रथी सुपर्ण हो उठे।

पंचम सर्ग में शिवाजी द्वारा मावली जनता में स्वतन्त्रता, समानता और मनुष्यता का भाव जगाकर उसे स्वाधीनता-संघर्ष के लिए तैयार किया गया है। शिवाजी ने मावली जनता को स्वदेश, स्वधर्म और स्वजाति की मुक्ति के लिए प्रेरित करते हुए कहा—

रहो मनुष्य की तरह
मनुष्य का स्वभाव हो
जिओ मनुष्य की तरह
मनुष्य से लगाव हो।

ज़मीन अन्न वस्त्र हो
स्वतंत्र यज्ञ दान हो
प्रसन्न देश में प्रसन्न
साँझ हो, बिहान हो।

उन्होंने मावलियों को बताया कि इस समय तुम जो ज़िन्दगी जी रहे हो, यह ज़िन्दगी है ही नहीं, तुम्हारा राजा भी मदान्ध है, उसे प्रजाहित की चिन्ता भी नहीं है, तुम पराधीनता की नारकीय ज़िन्दगी जी रहे हो, अतः —

दावाग्नि की तरह उठो
चपेटते हुए बढ़ो
समस्त गढ़ स्वबाहु में
लपेटते हुए बढ़ो

क़िला क़िला स्वतंत्र हो
स्वतंत्र वर्ण वेश हो
स्वतंत्र जाति जाति हो
स्वतंत्र यह स्वदेश हो।

शिवाजी के इस उद्‌बोधन का मावलियों पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने कहा कि आज तक किसी ने हमें इस तरह न तो जगाया था और न ही किसी का सक्षम नेतृत्व मिला था। सौभाग्य से आज हमें आप जैसे देवता मिल गये हैं। हम सब देशोद्धार के लिए तैयार हैं—

स्वराज्य के लिए खड़े
अजेय वन्य वीर हैं
निदेश दें चलें तुरन्त
मावली अधीर हैं

करें न देर देव, हम
प्रवाह की तरह बढ़ें
प्रचार वेग से दावाग्नि
दाह की तरह बढ़ें ॥

षष्ठ सर्ग में शिवाजी के नेतृत्व में मावलियों द्वारा तोरण क़िले की विजय का वर्णन हुआ है। कवि की दृष्टि में शिवाजी की तोरण-विजय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-अभियान का पहला क़दम थी—

तोरण हरण क्या
राष्ट्र की स्वतन्त्रता का
पहला चरण था
मंगल करण था।

इस स्वतन्त्रता-अभियान के अगले चरणों में शिवाजी ने एक-एक करके क़िलों को जीतना शुरू कर दिया। षष्ठ सर्ग में उन क़िलों की विजय का उल्लेख हुआ है—

ऐसी उठी आँधी महाराष्ट्र में भयानक कि
बड़े-बड़े क़िले हाथ लगे शिवराज के
जैसे केसरी की गन्ध पा के भगे वन्य जीव
वैसे ही शिवा का आगमन जान क़िलेदार
क़िले छोड़ भागे अर्ध मूर्छित अभागे हार

क़िलों की विजय से जनता में रणोत्साह पैदा हो गया। शिवाजी ने उन्हें और उत्साहित करते हुए कहा—

साथियो, प्रसन्न रहो साहसिक जीवन हो
रुचि हो स्वधर्म में
स्वजाति में स्वराष्ट्र में
रज-राज-ताज के लिए न युद्ध ठाना गया
युद्ध है
स्वधर्म हित
जाति हित

देश हित
आर्य वर्ण-वेश हित
बन्दी है स्वदेश उसे मुक्त करने के लिए
चलो, चलो साथ दो
साहस दो, हाथ दो।

शिवाजी के इस उद्‌बोधन से मावली मराठे घोर रोष से गरज उठे, शत्रु दहल गये और जनता में शिवाजी 'जनपति' के रूप में समादृत हो गये। चारों ओर उनकी गौरव-गाथा फैल गयी। लोग कहने लगे—

शिवा-सा न अन्य था
महाराष्ट्र धन्य था।

इसी बीच सोनदेव ने कल्याण-दुर्ग पर विजय प्राप्त करके शिवाजी के विजय-अभियान में एक और स्वर्णिम कड़ी जोड़ दी। उन्होंने कल्याण-दुर्ग के अधिपति मौलाना अहमद को जेल में डाल दिया और उसकी पुत्रवधू 'गौहर' को क़ैद कर लिया। सप्तम सर्ग में 'गौहर' के साथ शिवाजी के स्तुत्य व्यवहार का वर्णन हुआ है। रूपवती गौहर को शिवाजी के समक्ष प्रस्तुत करते हुए सोनदेव ने कहा कि मैंने दुर्ग जीत लिया है, आपकी आज्ञा के अनुसार न तो मस्जिद की एक ईंट छुई गयी है, न ही यवन धर्म, कुरान और स्त्रियों को कोई क्षति पहुँचाई गयी है। जब दुर्ग से लोग भाग रहे थे, तब अहमद की यह पुत्रवधू भी भागी थी किन्तु यह भाग न सकी—

प्रभो इसे स्वीकार करें
यह सुधा, तृषा हरने आई।

शिवाजी ने गौहर को ध्यान से देखकर कहा—

सचमुच यह नारी आँखों में
बरजोरी बस जाएगी
जिसे देख भर देगी क्षण
उस पर मधु रस बरसाएगी।

इतना कहने के बाद शिवाजी ने उपस्थित लोगों के समक्ष जो बात कही, वह उन्हें हतप्रभ कर गयी—

लेकिन दिव्य रूप के भीतर
झाँक रही है माँ मेरी
छवि रक्षा के लिए भवानी
सदा दे रही है फेरी।

पावन है, शशि-सी सुहासिनी है
फिर भी परनारी है।
इसकी छवि का केवल
भर्त्ता ही अतिधारी है।

और उन्होंने आदेश दिया—

अतः इसे अविलम्ब कनक
हीरा मोती के हारों से
नवल रेशमी वस्त्रों से
भूषित कर मणि उपहारों से

दिव्य पालकी पर बेटी की
तरह अभी घर पहुँचाओ
घरवालों में सुखी रहेगी
आहा, इसे न कलपाओ।

साथ ही गौहरबानो से क्षमा-याचना की—

देवि कष्ट के लिए क्षमा हो
बहुत बड़ा अपराध हुआ
झुके खड़े सैनिक दरबारी
खुश होकर दो उन्हें दुआ।

इस घटना से शिवाजी की सच्चरित्रता और सदाचारनिष्ठा का डंका वज गया और हिन्दू-मुस्लिम जनता समान रूप से शिवाजी की जयकार कर उठी और महाजनों ने उन्हें अपना योग्य संरक्षक स्वीकार कर लिया—

क्या हिन्दू क्या मुसलमान
सबने मिल जयकार किया
महाजनों ने शिव को अपना
संरक्षक स्वीकार किया।

शिवाजी के प्रताप के शंखनाद से दम्भी भूप वैसे ही मन्द हो गये, जैसे धर्म के प्रचार से नीच लोग हतबुद्धि हो जाते हैं।

अष्टम सर्ग में शिवाजी की जावली-विजय, नवम सर्ग में अफजल ख़ाँ द्वारा शिवाजी से मेल-मिलाप का प्रस्ताव रखना और दशम सर्ग में अफजल ख़ाँ और शिवाजी की भेंट तथा शिवाजी द्वारा अफ़जल ख़ाँ का वध वर्णित है। शिवाजी ने अफ़जल ख़ाँ का बड़ा ही भव्य स्वागत किया था, किन्तु स्वागत के लिए लगाये गये शामियाने की तड़क-भड़क को देखकर वह भड़क गया। उसने शिवाजी से बड़े रोप के साथ पूछा—

इतने जवाहरात लगे शामियाने में
मुश्किल पाना जिन्हें आज के ज़माने में
बोल, किसे लूट खड़ा किया शामियाना है
डाके डाल डाल बनवाता बुतख़ाना है?

यह सुनकर शिवाजी का क्रोध उबल पड़ा—

मिट्टी में गरूर मिला दूँगा वह मर्द हूँ
ज़िन्दगी भी याद करे ऐसा सिरदर्द हूँ
आगे कुछ बोला तो ज़बान खींच लूँगा मैं
तेरे ताज़े ख़ून से ज़मीन सींच दूँगा मैं॥

इतना सुनते ही अफ़जल ख़ाँ ने शिवाजी को वैसे ही अपनी भुजाओं में जकड़ लिया, जैसे भुजंग चूहे को जकड़ लेता है। उसने अपने मज़बूत हाथों से उनका गला दबा दिया, शिवाजी का दम घुटने लगा। उन्होंने तत्काल साँड़ के समान अपने सिर से अफ़जल ख़ाँ के सीने पर वार किया, बघनखे से उसका पेट फाड़ दिया और पीठ में छुरा घोंप दिया। अफ़जल ख़ाँ के वध से शिवाजी की शौर्यगाथा चारों तरफ़ फैल गयी, दुश्मनों में आतंक छा गया, यहाँ तक कि पुर्तगालियों और अंग्रेज़ों की भी रुह काँपने लगी—

शिवा के बल बिक्रम की कीर्ति
बढ़ी तो डरे विदेशी भी
राष्ट्र की धरती हर्षित हुई
प्रहर्षित भूप स्वदेशी भी।

पुर्तगीजों की नानी मरी
हिला अंग्रेज़ों का आसन
सभी कर देने लगे सभीत
भेंट में जीवन के साधन।

इस तरह पूर्व से पश्चिम तक, हिमालय से रामेश्वर तक शिवाजी के बल-प्रताप की धाक जम गयी और सभी राजे-महाराजे उनके सामने निस्तेज हो गये।

एकादश सर्ग में शाह जी के माध्यम से आदिलशाह और शिवाजी के बीच हुई बीजापुर-सन्धि का वर्णन हुआ है। जब शाहजी स्वदेश जा रहे थे, तब आदिलशाह ने उनसे कहा था कि अपने पुत्र शिवा से मेरी सुलह करा दो और उससे कह दो कि इसके एवज़ में वह उन गढ़ों को ले ले, जिन्हें उसने जीत लिया है। शाहजी ने जब सुल्तान के इस प्रस्ताव का ज़िक्र किया, तब शिवाजी ने कहा कि मेरा विरोध आततायियों से है। मेरा यह रण गो-द्विजकुल की रक्षा और अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए है। फिर भी, यदि आप चाहते हैं तो मैं सन्धि के लिए तैयार हूँ। शाहजी बहुत प्रसन्न हुए और वे बीजापुर चले गये।

द्वादश सर्ग में पूना पर औरंगज़ेब के मामा शाइस्ता ख़ाँ के आक्रमण और शिवाजी द्वारा उसको मार भगाने की ऐतिहासिक घटना का वर्णन हुआ है। पूना के क़िले में ठहरे शाइस्ता ख़ाँ पर शिवाजी ने बारातियों के भेष में अपने सैनिकों के साथ आक्रमण करके उसकी सारी योजना को विफल कर दिया। त्रयोदश सर्ग में मिर्ज़ा राजा जयसिंह और शिवाजी के बीच हुए ऐतिहासिक पत्राचार का बड़ा ही मार्मिक वर्णन हुआ है। शाइस्ता ख़ाँ के असफल हो जाने पर मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब की अधीनता स्वीकार कर चुके मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने जब औरंगज़ेब के आदेश पर महाराष्ट्र पर आक्रमण किया और शिवाजी से सन्धि की बात की, तब शिवाजी ने उनको राष्ट्रभक्ति और जनहित की उद्दात्त भावना से परिपूर्ण बड़ा ही कड़ा पत्र लिखकर यह सूचित किया कि उन्हें अभी राष्ट्र का नवनिर्माण करना है, दलितों को संगठित करना है, सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधना है और जो लोग अन्यायी, अत्याचारी, धर्म-विरोधी और शोषक हैं, उन्हें समाप्त करना है। आप औरंगज़ेब के सिपहसालार बनकर आये हैं। क्या आपको इससे लज्जा का अनुभव नहीं हो रहा है? मुग़ल बादशाह की चाकरी और उसकी बड़ाई करके क्या आपने अपनी राजपूती शान में बट्टा नहीं लगाया है? आप मुझे भी उसी नरक़ में क्यों ढकेलना चाहते हैं? आप जिस बादशाह के हिमायती हैं, वह बड़ा ही अन्यायी और पक्षपाती है, वह हिन्दुओं को सज़ाएँ देता है, उनके घरों-मन्दिरों को ढहाकर मस्जिदें बनवाता है। उसके शासन में गायों को मारकर उनके रक्त से मूर्तियों को नहलाया जा रहा है, बहू-बेटियों की आबरू भी सलामत नहीं है, हिन्दुओं के रक्त की नदी बह रही है, उन पर जजिया कर लगा हुआ है, हरिद्वार, मथुरा, अयोध्या और काशी जैसे देवतीर्थों में धार्मिक अत्याचार हो रहा है। क्या आप चाहते हैं कि मैं यह सब होने दूँ?

अनाचारियों को यहाँ खेलने दूँ?
दुखी हिन्दुओं को नरक़ झेलने दूँ?
महादेव के अर्घ पर थूकने दूँ?
उन्हें धर्म की पुस्तकें फूँकने दूँ?

मैं ऐसा न होने दूँगा। धर्म में हस्तक्षेप और फ़िरकापरस्ती को रोकने के लिए ही मेरा यह जीवन है। आपको भी यह सोचना चाहिए कि आपने जिस हिन्दू जाति में जन्म लिया, उसका धर्म हर तरह से संकटग्रस्त है। आप सन्धि की शर्तों के रूप में मुझे जो क़िले दे रहे हैं, उन्हें मुग़ल सल्तनत में मिला लीजिए और यदि आप कहें तो मैं सन्यास ले सकता हूँ, आपके चरणों में अपने शीश को काटकर चढ़ा सकता हूँ, किन्तु इस सबके लिए मेरी भी एक शर्त है–

अभी आज से गोकशी बन्द होवे
अनाचार ठट्ठा हँसी बन्द होवे।

गिरा के शिवालय खड़ीं मस्जिदें जो
जो विविध पत्थरों से जड़ीं मस्जिदें जो
ढहा के उन्हें देव मन्दिर बनावें
सविधि मूर्तियों की प्रतिष्ठा करावें।

सभी जाति पर एक दृष्टि होवे
शहँशाह में स्नेह की सृष्टि होवे
घृणा का अधम दण्ड जजिया हटावें
प्रजा के बढ़े भूमिकर भी हटावें।

× × ×

भरत भूमि स्वाधीन होगी बचन दें
दुखी हिन्दुओं को चरन में शरन दें
मुझे देश से देह प्यारी नहीं है
लगातार भरनी हुंकारी नहीं है।

यही सन्धि की शर्त है आप मानें
न मानें अगर तो दवा आप जानें॥

चतुर्दश सर्ग में मिर्ज़ा राजा जयसिंह द्वारा शिवाजी के पत्र का उत्तर वर्णित है। पत्र का उत्तर देते हुए जयसिंह ने लिखा—"शिवा, मैं तुम्हें साकार शिव मानता हूँ। तुमने धर्म का शंख फूँका है, महाराष्ट्र को नयी ज़िन्दगी दी है, तुम दुर्बलों के आश्रय हो, तुम्हीं से भारत-भूमि पर नयी ज्योति छा गयी है। इस सबके बावजूद तुम्हें मेरी नेक सलाह यह है कि तुम बादशाह औरंगज़ेब से सुलह कर लो। वैसे तुम्हारी सन्धि की शर्तें बड़ी कड़ी हैं, फिर भी मैं कोशिश करूँगा कि गोकशी बन्द हो जावे, धार्मिक अत्याचार समाप्त हो जाए, भेदभाव ख़त्म हो जाए, हाँ मस्जिदों को गिराकर पुनः मन्दिरों के निर्माण का कार्य अवश्य कठिन है। वैसे तुम आगरा चलो, वहाँ विस्तार से विचार-विनिमय होगा। इसी के साथ मेरा एक प्रस्ताव यह भी है कि मेरी लड़की का ब्याह तुम अपने लड़के के साथ कर लो।" इस पत्र को लेकर जब रघुनाथ पन्त शिवाजी के पास पहुँचे तो उनकी माँ और गुरु ने भी कहा—"तुम्हें औरंगज़ेब से मेल-मिलाप कर लेना चाहिए।"

पंचदश सर्ग में शिवाजी आगरा जाने की तैयारी करते हैं, षोडश सर्ग में वे आगरा दरबार में पहुँचते हैं। वहाँ अपमानित होने पर वे क्रुद्ध हो जाते हैं। उन्हें बन्दी बना लिया जाता है। सप्तदश सर्ग में औरंगज़ेब की पुत्री जेबुन्निसा से उन्हें बादशाह की बदनीयती का पत्ता चलता है और वे बड़ी सावधानी से क़ैद से भाग

जाते हैं। अष्टादश सर्ग में शिवाजी अपने गुरु रामदास के साथ साधुवेश धारण करके ब्रज, इलाहाबाद और काशी होते हुए सकुशल रायगढ़ पहुँच जाते हैं। एकोनविंश सर्ग में शिवाजी की माता जीजाबाई उनके समक्ष सिंहगढ़ को प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करती हैं। माता की इच्छापूर्ति के लिए शिवाजी तानाजी को बुलाकर सिंहगढ़ पर आक्रमण करने का निर्देश देते हैं। तानाजी सैन्यदल के साथ सिंहगढ़ पर चढ़ाई करते हैं, उदयभानु के साथ उनका भयंकर युद्ध होता है। इस युद्ध में तानाजी यद्यपि वीरगति को प्राप्त करते हैं, किन्तु सिंहगढ़ शिवाजी के हाथ में आ जाता है। तानाजी के निधन से शिवाजी को अपार दुःख होता है, किन्तु वे यह सोचकर शोकमुक्त हो जाते हैं कि जन्म-मरण तो जीवन के ध्रुव सत्य हैं। ताना ने तो देशोद्धार के लिए आत्मोत्सर्ग करके अपार यश कमाया है। माना कि सिंह खोकर मैंने कंकड़-पत्थर का गढ़ प्राप्त किया है, किन्तु सिंहगढ़ पर भगवाध्वज का फहराना एक बड़ी उपलब्धि है। यह सारी कथा चतुर्विंश सर्ग तक कही गयी है। पंचविंश सर्ग में औरंगज़ेब द्वारा शासित एक गाँव के दो मुसलमानों—शौक़तअली और अब्दुल गनी—के माध्यम से शिवाजी की उत्तम शासन-व्यवस्था का वर्णन किया गया है। एक दिन ये दोनों पूना आये। यहाँ की प्रजा की सुख-शान्ति और राज्य की उन्नति को देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अपने गाँव पहुँचकर लोगों को बताया कि वहाँ हर तरह की सुख-समृद्धि है, लोगों को किसी प्रकार का अभाव नहीं है, विद्वानों का काफ़ी सम्मान है, औरतों, ब्राह्मणों और गायों की बड़ी इज़्ज़त है, सभी अपने-अपने उद्योग-धन्धों में तल्लीन हैं, कोई झगड़ा-टंटा और बेईमानी नहीं है, अदालतों में कोई मुक़दमा नहीं है, सभी अपने-अपने धर्म-कर्म में लीन हैं, न कोई दुखी, न कोई मलीन है। सचमुच वहाँ स्वर्ग उतर आया है—

> सचमुच सरग उतरा वहीं
> अब न दिल लगता कहीं॥

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में शिवाजी के जन्म से लेकर उनकी उत्तम शासन-व्यवस्था तक के घटना-क्रमों, संघर्षों और शौर्यपूर्ण कृत्यों का वर्णन करके शिवाजी के प्रतापी जीवन, साम्प्रदायिक सौहार्द, स्वातन्त्र्य-प्रेम, देश, जाति, धर्म और गो-द्विज की रक्षा हेतु किये गये उनके कार्यों पर विशद् प्रकाश डाला गया है।

बालि वध

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद श्यामनारायण पाण्डेय ने पौराणिक कथाओं के आधार पर तीन प्रबन्ध काव्यों की रचना की—*बालि वध*, *वशिष्ठ* और *परशुराम*। इनमें *बालि वध* और *वशिष्ठ* खण्डकाव्य हैं और *परशुराम* महाकाव्य। *बालि वध* और *वशिष्ठ* का प्रकाशन 1975 ई. में हुआ। *बालि वध* में यद्यपि राम द्वारा बालि के

वध का लोकविश्रुत आख्यान वर्णित है, किन्तु कवि का उद्देश्य केवल उक्त पुराण-कथा को चित्रित करना नहीं है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत की बदली हुई सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों ने श्यामनारायण पाण्डेय को *बालि वध* लिखने के लिए प्रेरित किया है। कवि को यह देखकर अपार वेदना हुई कि जिस देश के पुरखों ने कभी विजातियों के बीच जाकर अपने बल-पौरुष की धाक जमाई थी और आर्य-संस्कृति का प्रसार किया था, उस देश के लोग अब अपनी संस्कृति को भूलते जा रहे हैं और पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण करके आत्मनाश कर रहे हैं। इस खण्डकाव्य के माध्यम से कवि ने भारतीय जनता को यह स्मरण कराना चाहा है कि राम ने उत्तर से दक्षिण जाकर केवल सीता का उद्धार नहीं किया, बल्कि सुग्रीव से मित्रता करके, पापी बालि का वध करके उत्तर और दक्षिण के बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध क़ायम करने का भी उल्लेखनीय कार्य किया। उन्होंने इस ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है—"अन्य जातियों और संस्कृतियों के बीच पहुँचकर हमारे पूर्वजों ने अपना नैतिक मान और शौर्य ऊँचा किया। राष्ट्रीयता का यह पक्ष हमारे हृदय को उल्लसित करता है।......इस काव्य में राष्ट्रीयता का भी आदर्श देखने को मिलता है कि उत्तर से दक्षिण जाकर राम ने राष्ट्रीय एकता के लिए क्या-क्या किया?" स्पष्ट है कि इस खण्डकाव्य में राम-सुग्रीव की मित्रता और *बालि वध* में एक गूढ़ सांस्कृतिक अभिप्राय विद्यमान है। कवि ने उस अभिप्राय को भारतीय जनता में प्रसारित करके स्वस्थ सांस्कृतिक वातावरण बनाने का प्रयत्न किया है। आरम्भ में कवि ने बालि के बल, पौरुष और पराक्रम का वर्णन करके उसकी सराहना की है और उसे राष्ट्रप्रेमी भी सिद्ध किया है। वह स्वाभिमानी है और देश-द्रोही को कभी माफ़ नहीं कर सकता है। सुग्रीव ने जब राम से मित्रता कर ली, तब उसने उसे देश-द्रोही घोषित कर दिया और तारा से कहा—

देश-द्रोहियों का गर्जन किष्किन्धा कभी न सह सकती।
और उसे युवराज बनाने को न स्नेह से कह सकती॥

प्रकारान्तर से श्यामनारायण पाण्डेय ने देश-द्रोहियों को उक्त शब्दों में चेतावनी दी है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देश में विघटनकारी शक्तियाँ सक्रिय हो उठी थीं। लोग आचरण भ्रष्ट होने लगे थे, बातें ऊँची-ऊँची करते थे किन्तु उनकी करनी निकृष्ट हो चली थी। नेतावर्ग लुभावने नारों और आदर्शों की बातें करके जनता को ठग रहा था। ऐसे समय में श्यामनारायण पाण्डेय ने *बालि वध* लिखकर अनीति की राह पर चलनेवालों को अगाह किया और राष्ट्रप्रेम, बन्धु-मैत्री तथा मित्र-धर्म का पाठ पढ़ाया। यही नहीं, उन्होंने राष्ट्रीय भावना को अन्तर्राष्ट्रीय चेतना से जोड़कर विश्वबन्धुत्व का भी सन्देश दिया। राम ने मरणासन्न बालि को जब पुनर्जीवित करने की इच्छा प्रकट की तो उसने केवल इतनी प्रार्थना की—

मुझे जिलाने का प्रयत्न कुछ भी न करें, केवल वर दें।
मेरे मन में विश्वबन्धुता का सम्मानित स्वर भर दें॥

अपने बल-पौरुष के अभिमानी बालि द्वारा विश्व-बन्धुत्व का वरदान माँगना वह नवीन दृष्टि है, जो कवि में स्वातन्त्र्योत्तर भारत की परिस्थितियों के बीच पैदा हुई है। उसने किष्किन्धा के पक्षियों के मधुर कलरव से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना की प्रेरणा ली और आशा व्यक्त की है कि इसी भावना से धरती पर से दुःखों को भगाया जा सकता है—

इसी तरह सब लोग परस्पर मेल बढ़ाकर गायें तो।
दुनिया से दुःख उठ जाएँगे, सबको गले लगायें तो॥

कहना न होगा कि बढ़ती हुई अराजकता और अशान्ति, जीवन के प्रति डिगती आस्था और बिखरते हुए आत्मबल के वातावरण में *बालि वध* जैसी रचनाएँ राष्ट्रीय जीवन में नयी चेतना का प्रसार करती हैं।

वशिष्ठ

वशिष्ठ द्वारा श्यामनारायण पाण्डेय ने स्वातन्त्र्योत्तर भारत के नवयुवकों में विवेक, बुद्धिमत्ता, विनम्रता और परोपकार की भावना को जागृत करने का प्रयास किया है। उन्होंने इस ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है—"वशिष्ठ का व्यक्तित्व युवकों में विवेक और सहिष्णुता ला सके और विश्वामित्र का संघर्षशील व्यक्तित्व उन्हें पग-पग पर प्रेरणा दे सके एवं उन्हें बार-बार अपने लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर अनवरत गतिशील बने रहने के लिए दृढ़, आत्मशक्ति को जागृत कर सके, यही मेरी रचना का उद्देश्य है।" स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देश के नवयुवकों में नव-निर्माण की जो उत्साहपूर्ण ललक पैदा हुई थी, वह सत्तालोलुप और स्वार्थी नेताओं के कारण बहुत जल्दी दिशाहीनता का शिकार हो गयी। युवाशक्ति अशान्त और अराजक हो उठी। उद्धत युवाशक्ति को सन्मार्ग पर लाने, राष्ट्रनिर्माण की नयी प्रेरणा देने और अहिंसा के पथ पर बढ़ने की उदात्त भावना का प्रसार करने के उद्देश्य से श्यामनारायण पाण्डेय ने परम तपस्वी वशिष्ठ जी के जीवन की उस घटना का वर्णन किया, जो तप, त्याग, ज्ञान, विवेक, अहिंसा और सदाचार के पूत भावों से ओतप्रोत है।

विश्वामित्र ने वशिष्ठ की शबला नामक कामधेनु को प्राप्त करने के लिए दुर्धर्ष संघर्ष किया था। वशिष्ठ के तपोबल के समक्ष विश्वामित्र के अस्त्र-शस्त्रों की बौछार निष्फल हो गयी थी। तपोबल के समक्ष शस्त्रबल हार गया था, हिंसा अहिंसा से पराजित हो गयी थी। विश्वामित्र के पराजित हो जाने के बाद देवगण ने इस सत्य को हृदयंगम किया कि अहिंसा हिंसा से बड़ी है—

वे आज तक थे जानते हिंसा अहिंसा से बड़ी।
आया समझ में अब अहिंसा लोक में सबसे बड़ी॥

अपने ऐतिहासिक महाकाव्यों में इतिहास के सोये हुए वीरों को जगानेवाले और ऐतिहासिक एवं पौराणिक चरित्रों की शौर्यगाथाओं का ओजस्वी वर्णन करनेवाले कवि को भारत की बदली हुई परिस्थितियों में यदि अहिंसा और तपोबल का महत्व समझ में आ रहा है तो मानना चाहिए कि यह कवि अपने विचारों में हठवादी नहीं है। उसके समक्ष हमेशा राष्ट्र की मुक्ति और उसके निर्माण एवं विकास का लक्ष्य रहा है। आज़ादी के बाद राष्ट्र के निर्माण एवं विकास की प्रक्रिया को तेज़ करने और युवाशक्ति को भौतिकता की अन्धी दौड़ से विरत कर निरभिमानता, अहिंसा, तप, त्याग का पाठ पढ़ाने के उद्देश्य से श्यामनारायण पाण्डेय ने वशिष्ठ के तपःपूत जीवन को आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया। यह भी ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने विश्वामित्र के संघर्षशील और पौरुषपूर्ण व्यक्तित्व को भी कम करके नहीं प्रस्तुत किया है। उनकी दृष्टि में तपोबल और अस्त्रबल का विवेकपूर्ण इस्तेमाल होना चाहिए। तप का भी उपयोग सत्कर्म के लिए ही होना चाहिए—

तप से हुआ क्या लाभ, जब दुष्कर्म में ही लीन हो।
वह तप करेगा क्या भला जिसका विचार सही न हो॥

इसी तरह यदि अस्त्रबल का उपयोग निरीह लोगों की हत्या के लिए और जनहित के विरुद्ध किया जाता है तो वह भी ग़लत है। विश्वामित्र को तप का अभिमान और अस्त्र का गर्व था। अपने तपोबल और अस्त्रबल के अहंकार में चूर्ण वे न्याय-अन्याय का विवेक खो बैठे थे। ऐसी स्थिति में कवि ने जनकल्याण का पक्ष लेते हुए इस अहंकार को चूर्ण करने को उचित ठहराया है। वशिष्ठ ने तप और शस्त्र के अहंकार से भरे हुए विश्वामित्र से कहा—

है अस्त्र का अभिमान तो मैं चूर्ण कर दूँगा उसे।
तप का तुम्हें है गर्व तो मैं खर्व कर दूँगा उसे॥

कहना न होगा कि जिस समय *वशिष्ठ* खण्डकाव्य की रचना हुई, उस समय भारत में ही नहीं समूचे विश्व में हिंसा-अहिंसा और शस्त्रीकरण-निरस्त्रीकरण की बहस छिड़ी हुई थी। भारत अहिंसा और निरस्त्रीकरण के पक्ष में था। ऐसे समय *वशिष्ठ* काव्य की रचना करके श्यामनारायण पाण्डेय ने सत्य, अहिंसा, तप, त्याग और जनकल्याण के पक्ष में वातावरण बनाने का कार्य किया। *वशिष्ठ* के चरित्र-प्रकाश से कवि ने यह प्रतिपादित करने का सफल प्रयास किया है कि हिंसा और शस्त्र-बल से समस्या का समाधान नहीं निकल सकता है। यह तो ध्वंस का मार्ग है। किसी भी देश और समाज का निर्माण और विकास उस देश की जनता की सच्चरित्रता, कर्मठता और त्यागपूर्ण भोग से ही सम्भव है। इस काव्य में कवि

ने प्रकारान्तर से भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच एक समुचित सम्बन्ध की भी वकालत की है। दोनों तरह का विकास उपेक्षित है—भौतिक भी और आध्यात्मिक भी। तत्त्वज्ञान से व्यक्ति माया-मोह के बन्धनों से तो मुक्त हो सकता है, किन्तु शरीर के रहने तक तो उसे अपनी भूख-प्यास को दूर करने का प्रयत्न करना ही पड़ेगा। विश्वामित्र ने वशिष्ठ से बहुत ही स्वाभाविक प्रश्न किया है—

तत्त्वज्ञान की चर्चा से ऋषि सत्तम पेट नहीं भरता।
बोलो हे ब्रह्मज्ञ, कौन-सा भूखा पाप नहीं करता॥

'भूखा व्यक्ति कौन-सा पाप नहीं करता' और 'भूखे भजन न होहिं गोपाला' के सत्य से भी कौन इनकार कर सकता है, फिर भी सारा जीवन पेट के लिए ही नहीं है। पेट-केन्द्रित जीवन-दर्शन भी उपेक्षणीय है और भौतिक समस्याओं की अनदेखी करनेवाला कोरा ब्रह्मज्ञान भी। इस तरह इस काव्य में श्यामनारायण पाण्डेय ने भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच समुचित सामंजस्य की आवश्यकता को भी रेखांकित करने का प्रयास किया है। निर्बल में आत्मशक्ति और सबल में आध्यात्मिकता का विकास करने के कारण यह रचना अपनी पौराणिकता के बावजूद समसामयिक सन्दर्भों में भी प्रासंगिक हो गयी है। इसकी रचना करते समय कवि के ध्यान में सामयिक जीवन-संघर्ष बराबर उपस्थित रहा है। यह तथ्य उसके इस वक्तव्य से समझा जा सकता है—"समसामयिक सन्दर्भों में भी मेरी पौराणिक रचना परिस्थितियों के संघातों-प्रतिघातों से क्षत-विक्षत तथा निराशा के भी घनीभूत अहंकार में डूबे हुए व्यक्तियों-विद्यार्थियों के लिए एक प्रेरणास्रोत का कार्य कर सकती है।" (भूमिका, पृ. 5)

परशुराम

यह श्यामनारायण पाण्डेय की अन्तिम रचना है। यह 1985 ई. में विश्वविद्यालय, प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित हुई। मूलरूप में यह पुस्तक *परशुराम की जय* नाम से तैयार हुई थी, किन्तु प्रकाशन के समय इसका नाम *परशुराम* कर दिया गया।

परशुराम तेईस सर्गों का सांस्कृतिक महाकाव्य है। इसमें भृगुवंशी परशुराम को नायक के रूप में और हैहयवंशी राजा सहस्रार्जुन को प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया गया है। परशुराम आर्य-संस्कृति के रक्षक, वर्णाश्रम धर्म के पोषक, दुष्ट-विध्वंसक, आश्रम-कुल के संरक्षक और आर्य-धर्म के प्रसारक हैं, जबकि सहस्रार्जुन आर्य-धर्म एवं संस्कृति का विध्वंसक, ऋषियों-मुनियों का संहारक, उनके यज्ञ-कर्म और तपस्या का विनाशक है। उसे अपने बल-पौरुष और पराक्रम का इतना घमण्ड था कि उसने आश्रम-संस्कृति-प्रधान आर्यधर्म को नष्ट करने का संकल्प कर

लिया था। वह आत्मपरिचय देते हुए कहता है—

मैं नहीं खिलौना शैशव का
मैं बन्दर नहीं मदारी हूँ।
स्वच्छन्द त्रिलोक-विजेता हूँ
सामान्य नहीं अवतारी हूँ॥
× × ×
बलमस्त सहस्र भुजाओं में
दाहक हथियार दमकते हैं।
मेरे मणिमय सिंहासन के
रतनारे रतन चमकते हैं।
× × ×
मैंने समुद्र को रौंदा है
पर भीगे मेरे वस्त्र नहीं।
लाखों के मस्तक काटे हैं
पर मुड़े न मेरे अस्त्र कहीं॥

ऐसे प्रमत्त सहस्रार्जुन का वध करके परशुराम ने आर्य-धर्म की पताका फहरायी और ऋषियों-मुनियों को अपने-अपने आश्रमों पर धर्म, दर्शन और तत्त्व-चिन्तन की परम्परा को पुनर्जीवित करने का अवसर प्रदान किया।

तेईस सर्गों की कथा में परशुराम का जन्म, सुदास नृप की बहन लोमा और परशुराम की भेंट, सहस्रार्जुन द्वारा वशिष्ठ के आश्रम पर आक्रमण, किशोर परशुराम द्वारा लोमा की रक्षा, बाद में सहस्रार्जुन द्वारा दोनों का अपहरण, परशुराम की घोर तपस्या, प्रसन्न होकर शिवजी का परशुराम को अपना धनुष प्रदान करना, अघोरियों के गुरु डण्डनाथ से परशुराम की भेंट, अघोरवन के अघोरियों पर परशुराम का प्रभाव, परशुराम की माता रेणुका का गन्धर्वराज और कुष्ठरोगियों की सेवा, परशुराम के पिता द्वारा रेणुका के शिरच्छेद का आदेश देना, परशुराम द्वारा माता को सकुशल घर ले आना, पिता को सही आर्य-धर्म की पहचान कराना, वशिष्ठ द्वारा सुदास को दाशराज्ञ में सम्मिलित होने के लिए परामर्श देना, सहस्रार्जुन द्वारा ऋषियों-मुनियों के आश्रमों को नष्ट करने की योजना, परशुराम द्वारा सहस्रार्जुन को समाप्त करने का संकल्प, दोनों में भीषणयुद्ध, सहस्रबाहु का वध और सूर्यवंशी राम एवं भृगुवंशी राम की भेंट, परशुराम के कहने पर राम द्वारा धनुष पर प्रत्यंचा को चढ़ाना और राम के रामत्व को पहचानकर परशुराम का राम में ही समा जाना आदि प्रसंगों का क्रमबद्ध निरूपण किया गया है। इस कथा का मूल स्वर आर्य-धर्म की रक्षा और आश्रम-संस्कृति का विकास है। इसी के लिए परशुराम ने ऋषियों-मुनियों के विरोधी सहस्रार्जुन का वध किया। सहस्रबाहु के वध के बाद जो धर्ममय सांस्कृतिक

वातावरण पुनर्जीवित हुआ, उसका वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

आर्य सभ्यता संस्कृति की
बह रही चतुर्दिक धारा है।
पराऽपरा विद्याश्रम सबको
लगता कितना प्यारा है।

परशुराम के माध्यम से कवि ने यह भी स्पष्ट करना चाहा है कि केवल तप-त्याग से ही सभ्यता और संस्कृति की रक्षा नहीं की जा सकती है। दुराचारियों से इसकी रक्षा करने के लिए भयकारी बलपौरुष भी चाहिए—

भय के बिना न सत्यधर्म
चिर तक जीवित रह सकते हैं।
आर्य-सभ्यता-संस्कृति के
न विरोध दुर्ग ढह सकते हैं॥

कहना न होगा कि यदि परशुराम के फरसे ने आततायियों का संहार न किया होता तो वशिष्ठ, पराशर, जमदग्नि आदि ऋषियों के आश्रम की संस्कृति समाप्त ही हो गयी होती। परशुराम के फरसे के तेज ने ही हैहयवंश को उच्छिन्न करके आर्य-संस्कृति की रक्षा की—

हैहय कुल की नींव खुद गयी
कोई चिह्न न कहीं बचा।
तृण सम जल सब भस्म हो गये
ऐसा फरसे का ताप तचा॥

सहस्रबाहु का वध करने के बाद परशुराम ने जनता को कर्मनिष्ठा, धर्मपरायणता, आध्यात्मिकता और सदाचार-निष्ठा का जो सन्देश दिया है, भारतीय जनता के लिए वही कवि का भी सन्देश है—

जन्मभूमि के संरक्षण का
भार वहन करना होगा।
राष्ट्र धर्म रक्षा-वेला में
कष्ट सहन करना होगा॥

श्रुति मन्त्रों से ही जगती का
रागद्वेष मिट सकता है।
आत्मा का दर्शन होगा
चित में चेतन टिक सकता है॥

प्रभु में भक्ति बड़ों में श्रद्धा
स्नेह पलेगा छोटों में।

ब्रह्मचर्य से शक्ति बढ़ेगी
होंगे सभी लँगोटों में॥

एक धर्म के बिना एकता
कभी नहीं आनेवाली।
सूर्य बिना है कौन शक्ति
जो तिमिर निगल जानेवाली॥

यह मेरा सन्देश डाल दो
सभी जनों के कानों में
परशु नहीं तो उठ जाएगा
रत होगा बलिदानों में॥

पौराणिक कथा के अनुसार परशुराम ने अपने पिता के कहने पर अपनी माता रेणुका का सिर फरसे से काट डाला था। श्यामनारायण पाण्डेय ने इसमें थोड़ा-सा परिवर्तन किया है। कुष्ठरोग से पीड़ित गन्धर्वराज और उनकी जनता की सेवा के लिए रेणुका जमदग्नि को छोड़कर चली गयी थीं। जमदग्नि ने उन्हें कुलकलंकिनी और परपुरुषगामिनी मानकर परशुराम से उनका वध करने के लिए कहा था, किन्तु जब परशुराम ने सच्चाई को जाना, तब रेणुका को उनके समक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा कि आपकी आज्ञा के अनुसार मैं अभी माता का सिर काट डालूँगा, किन्तु उसके बाद आत्महत्या भी कर लूँगा, क्योंकि मैं मातृहन्ता होकर लोगों के बीच चाण्डाल कहलाकर जीवित नहीं रह सकता। वैसे आपको अपने जिस आर्यत्व पर अभिमान है, उसे आप ठीक से जानते-समझते ही नहीं हैं। आपने तो आर्यत्व को अपनी देह पर ही डाले रखा, उसके मूल तत्त्व को कभी जाना ही नहीं। आपने हमेशा दूसरों द्वारा बनाई गई राह पर ही चलने का कार्य किया। न तो आपने कभी अपनी राह बनाई, न ही सच को जानने की कोशिश की—

भाइयों को मारने भेजा वहाँ
पाँव से चलकर स्वयं देखा नहीं।
किस बड़े गन्धर्व की है प्रेमिका
किस तरह के धर्म में जाकर फँसी।

यदि अपने गन्धर्वराज के पास जाकर माता की वास्तविक स्थिति को जानने की कोशिश की होती तो आप उसके वध का आदेश न देते। मैं आपसे पूछता हूँ कि मृत्युशैया पर पड़े लूले, लँगड़े और अपाहिज कोढ़ियों की सेवा करने से मेरी माँ अनार्या कैसे हो गयी?

हाथ के लूले सड़े सब पाँव के
मृत्यु शैया पर पड़े नित चीख़ते

कोढ़ियों की जो सतत सेवा करे
वह अनार्या किस तरह माँ हो गयी?

आपकी सद्बुद्धि को मैं क्या कहूँ
निज प्रिया को स्वयं ही कुलटा कहा
पूज्य कल्याणी सती कल तक रही
आज वध्या घृणित कैसे हो गयी?

पाप रहता है नहीं आचार में
दृष्टि में—जो पाप के पीछे पड़ी
क्या कहूँ सब साथ ही अन्धे हुए
यह किसी को आज तक सूझा नहीं।

"पाप आचार में नहीं, पाप के पीछे क्रियाशील दृष्टि में है" यह कहकर परशुराम ने पाप की भिन्न व्याख्या प्रस्तुत की और अपने पिता की आँखों को खोल दिया। उन्होंने रेणुका और परशुराम को एक साथ सम्बोधित करते हुए कहा—

रेणुके मैंने तुम्हारा वध किया
पर तुम्हारे पुत्र ने जीवन दिया
राम, अब तू परशु अपना फेंक दे
मैं प्रतिज्ञा तोड़ता हूँ हर्ष से।

श्यामनारायण पाण्डेय ने रेणुका के इस प्रसंग से समूची प्रबन्ध-कथा को काफ़ी अर्थवान् और मार्मिक बना दिया। इस प्रसंग से जहाँ परशुराम की पितृभक्ति, मातृभक्ति और सत्यनिष्ठा उजागर हुई है, वहीं दीन-दुखियों के प्रति रेणुका की अपार करुणा और उनकी सेवा करने के निश्छल व्रत की गरिमा भी उद्घाटित हुई है।

इस काव्य में परशुराम के तेजस्वी व्यक्तित्व को केन्द्रीयता प्रदान की गई है। वे परम तपस्वी, सदाचारनिष्ठ, कर्त्तव्यपरायण और आर्य-धर्म एवं संस्कृति के रक्षक हैं। लोमा से पहली भेंट होने पर उन्होंने जिस तरह के आत्मसंयम, पवित्र-भाव और सहस्रार्जुन द्वारा लोमा के प्रति कामातुर वचनों के कहने पर उसके प्रति जिस तरह क्रोधाभिव्यक्ति की, वह उनके तपोपूत ओजस्वी व्यक्तित्व का परिचायक है। यौवनोन्मत्त स्वच्छन्द लोमा जब साधनारत किशोर परशुराम के पास आई, तब उन्होंने जिस धर्म-कर्त्तव्य की बातों से उसे संयमित किया, वह उनकी अडिगता और लोक-मर्यादा की रक्षा का द्योतक है। उन्होंने उससे कहा—

एकान्त स्थल में नारी को
किसी पुरुष से मिलना
वर्जित है, धर्म विमुख है
दोनों का हिल-मिल खिलना।

इतना कहकर उन्होंने जब आत्मपरिचय दिया और यह बताया कि मैं समवय के यती कुमारों को संगठित करके आश्रमों की रक्षा का उपाय कर रहा हूँ तब वह भी उन्हीं की भावधारा में बह गयी और बोलीं—

हँस लोमहर्षिणी बोली
मैं साथ तुम्हारा दूँगी
तुमने मुझको पहचाना तो
धर्म-प्रचार करूँगी।

वशिष्ठ के आश्रम में जब सहस्रार्जुन लोमा पर कामातुर होकर टूट पड़ा, तब क्रोधाभिभूत होकर परशुराम ने उसे काफ़ी फटकारा—

तू जड़ संस्कृति में पला हुआ
है, काम-विवश मतवाला है
क्यों सती राजकन्या जीवन को
निन्दित करनेवाला है।

तू शाप ग्रस्त है नर-पिशाच
तू मुझसे उसकी बात न कर
वह लोमहर्षिणी साध्वी है
तू जा इतना उत्पात न कर।

और उसे सावधान करते हुए कहा—

तू उस पर हाथ लगाएगा
तो हाथ अभी कट जाएगा
तू भले देख ले परशु-धार
तन अलग-अलग बँट जाएगा।

लोमा का यह प्रसंग तरुणों में सद्विवेक पैदा करनेवाला है। इस प्रसंग में परशुराम ने जिस तरह धर्म, शील और मर्यादा की रक्षा के लिए अपनी सन्नद्धता दिखायी है, वह अनुकरणीय है। इस प्रसंग के बाद से परशुराम के व्यक्तित्व में उत्तरोत्तर निखार आता गया है और वे आर्य-धर्म, राष्ट्रधर्म, आर्य-संस्कृति और ऋषियों-मुनियों के त्राता के रूप में प्रतिष्ठित हो गये हैं। वशिष्ठ मुनि ने जब ऋषियों-मुनियों के बीच सहस्रार्जुन द्वारा आर्य-धर्म के विनाश की आशंका व्यक्त की तब परशुराम ने कहा—

आर्यत्व धर्म के पायों को
मैं कभी नहीं हिलने दूँगा
मैं व्याध धर्मियों को आर्यों
से कभी नहीं मिलने दूँगा।

और–

वीर चक्रवर्तियों के सहयोग से
हाँ घृणा करेंगे अब राग भोग से
देश की पताका फहराते रहेंगे
गर्व से धर्म-गीत गाते रहेंगे।

आर्य-धर्म को विनष्ट करने के लिए संकल्प-बद्ध सहस्रार्जुन का वध करके उन्होंने अपने वचन का पालन किया और लोक के समक्ष एक दृढ़व्रती, परम तपस्वी, धर्मनिष्ठ, आर्य-संस्कृति-रक्षक एवं दुर्धर्ष योद्धा का आदर्श प्रस्तुत किया।

रूपान्तर

श्यामनारायण पाण्डेय ने मौलिक काव्य-रचना के साथ-साथ पद्यानुवाद में भी अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। किसी कृति का दूसरी भाषा में अनुवाद करना सरल कार्य नहीं है, पद्यानुवाद तो और भी कठिन होता है, क्योंकि इसमें न केवल भाव और तथ्य की सुरक्षा करनी पड़ती है, बल्कि उसकी सर्जनात्मकता को भी बनाये रखना पड़ता है। कविता का कविता में अनुवाद एक टेढ़ी खीर है। यह वही कवि कर सकता है, जो मूलग्रन्थ की भाषा और संवेदना से पूरी तरह परिचित हो और उसी भाव-दशा को आत्मसात् करके उसकी तद्वत् अभिव्यक्ति करने में सक्षम हो।

श्यामनारायण पाण्डेय ने कालिदास की प्रसिद्ध रचना *कुमारसम्भव* का *रूपान्तर* (1948 ई.) नाम से पद्यानुवाद किया है। उन्होंने *कुमारसंभव* के सप्तम सर्ग का ही अनुवाद किया है और भरसक कोशिश की है कि मूलग्रन्थ के भाव हिन्दी पद्यों में पूरी तरह उतर आएँ। इस कार्य में वे कुछ हद तक सफल भी रहे हैं। एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

मूल

तेषायाविर्भूद्ब्रह्मा परिम्लानमुखाश्रियाम्।
सरसां सुप्तपदानां प्रातर्दीधितिमानिव ॥

रूपान्तर

हत-श्री सुरों के सामने
शोभित पितामह यों हुए।
मुकुलित-कमल-सर सामने
शोभित सुबह रवि ज्यों हुए ॥

मूल

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधिऽवगाह्य, स्थितपृथिया इव मानदण्डः ॥

रूपान्तर

उत्तर दिशा में देव-सम
गिरिराज हिमालय राजता।
घुस पूर्व-पश्चिम सिन्धु में
भू-मानदण्ड विराजता ॥

ध्यान से देखने पर पता चलता है कि श्यामनारायण पाण्डेय ने शब्दानुवाद करने की कोशिश अधिक की है, फलस्वरूप उनके अनुवाद में वह चारुता नहीं आ पाई है जो मूल छन्द में विद्यमान है। "पूर्वापरों तोयनिधिऽवगाह्य" का अनुवाद "घुस पूर्व-पश्चिम सिन्धु में" सटीक नहीं है। एक अन्य श्लोक का भी उपयुक्त अनुवाद नहीं हो सका है—

नवपरिणय लज्जा भूषणां तत्र गौरीं
वदनमपहरन्ती तत्कृताक्षेपमीशः।
अपि शयन सखीभ्यों दत्तवाचं कथंचित्
प्रमथ मुख विकारैर्हासयामास गूढ़म् ॥

रूपान्तर

नवलज्जिता सखि मुखरिता
शिवकर्ष से गूढ़ानना।
प्रमथदादि गण ने उस नवोढ़ा
को हँसाया मुँह बना॥

"नवपरिणयलज्जा भूषणां" का अनुवाद "नवलज्जिता" समीचीन नहीं है। वैसे संस्कृत जैसी समासबहुला और संश्लिष्ट भाषा का अन्य भाषा में अनुवाद करना आसान नहीं है। प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति होती है इसलिए अनुवादक को चाहिए कि वह "मक्षिका स्थाने मक्षिका" की नीति न अपनाकर उसके भाव-प्रवाह को अनूदित करे। ऐसा करने पर ही कभी-कभी अनुवाद मूल की अपेक्षा अधिक प्राणवान हो जाता है। श्यामनारायण पाण्डेय ने यह प्रयत्न नहीं किया है।

निष्कर्ष

श्यामनारायण पाण्डेय की रचनाओं का अध्ययन करने के बाद कोई भी इस

निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि उनकी मूल की व्यचेतना ऐतिहासिक, पौराणिक एवं सांस्कृतिक है। धर्म, संस्कृति, देश-प्रेम, देशोद्धार, स्वतन्त्रता, स्वाभिमान, पौरुष आदि उनके प्रिय विषय हैं। उनकी वृत्ति इन्हीं से सम्बन्धित ऐतिहासिक-पौराणिक पात्रों-घटनाओं के वर्णन में विशेष रूप से रमी है। उनका समूचा काव्य वर्णनात्मक काव्य का उदाहरण है। वे वर्णन-प्रिय कवि हैं। युद्ध-दृश्यों एवं योद्धाओं के पौरुष वर्णन में वे ख़ूब रुचि लेते हैं। वे वीर भावना के समर्थ कवि हैं। उनकी वीरभावना राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से जुड़ी हुई वह व्यापक भावना है, जो किसी भी देश-काल के समाज के लिए आवश्यक होती है।

5

हल्दीघाटी और *जौहर*

हल्दीघाटी और *जौहर* श्यामनारायण पाण्डेय की दो विशिष्ट कृतियाँ हैं। इन कृतियों से उन्हें हिन्दी जगत् में अपार लोकप्रियता ही नहीं मिली, वरन् वीरभावना और राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के ओजस्वी कवि के रूप में स्थायी महत्त्व भी मिला। इन्हीं रचनाओं से उन्होंने अपने को 'आर्य-धर्म और संस्कृति के वीर पुजारी' और 'इतिहास में सोये हुए वीरों' को पुनः जगानेवाले 'वीरकाव्य के अन्धड़ कवि' के रूप में प्रतिष्ठित किया। इन रचनाओं से भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष के तमाम अमर सेनानियों को भी अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ते रहने और स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व बलिदान कर देने की प्रेरणा भी मिली है। *हल्दीघाटी* को प्रस्तुत करते समय उन्होंने यह विश्वास व्यक्त किया था कि *हल्दीघाटी* युग-युग तक भारतीयों को बहादुरी का पाठ पढ़ाती रहेगी, स्वाधीनचेता स्वाभिमानी वीरों के हुँकार में शक्ति भरती रहेगी और राष्ट्रीय संकट के समय देश के पौरुष को जगाती, ललकारती रहेगी। (*आधुनिक कवि*-17) इसी तरह उनके जौहर काव्य में भारतीय नारियों को सतीत्व का उदात्त पाठ पढ़ाने की दृष्टि अन्तर्निहित है। *हल्दीघाटी* और *जौहर* के उद्देश्य पर संयुक्त रूप में वक्तव्य देते हुए उन्होंने लिखा है—*हल्दीघाटी* लिखकर मैंने जनता के सामने एक भारतीय वीर पुरुष का आदर्श रखा और *जौहर* लिखकर एक भारतीय सती नारी का, इसलिए नहीं कि कोई छन्दों के प्रवाह में झूम उठे, बल्कि इसलिए कि भारतीय पुरुष 'प्रताप' को समझें और भारतीय नारियाँ 'पद्मिनी' को पहचानें।" (*जौहर*, भूमिका पृ. 28)। इस तरह इन दोनों महाकाव्यों में भारतीय इतिहास के दो महान चरित्रों—महाराणा प्रताप और पद्मिनी—के सर्वस्व बलिदान की महागाथा के चित्रण में भारतीय पुरुषों और स्त्रियों में स्वातन्त्र्य भावना, देश, धर्म, जाति और संस्कृति के प्रति उत्कट प्रेम जागृत करने का महत् उद्देश्य निहित है।

हल्दीघाटी

यह श्यामनारायण पाण्डेय का वीररसप्रधान प्रथम महाकाव्य है। इसमें सत्रह सर्ग हैं। इसके प्रारम्भ में कवि ने राणाप्रताप, चित्तौड़, झाला मान्ना, चेतक, वीर सिपाही, हल्दीघाटी और भाला (महाराणा प्रताप का भाला) का ओजपूर्ण शब्दों में

परिचय देते हुए लिखा है कि जो आग बरसने के बावजूद अपने पथ पर बढ़ता रहा, शस्त्रहीन अवस्था में शत्रुओं से घिर जाने के बाद भी जो युद्ध-विरत नहीं हुआ, काँटों के सिंहासन पर भी जिसका मुख सैकड़ों सूर्य की प्रभा से दमकता रहा, संकटकाल में भाई के छोड़ देने पर भी जो देश के मान-स्वाभिमान और स्वातंत्र्य के लिए लड़ता रहा और अपना सर्वस्व बलिदान करके जिसने देश की प्रतिष्ठा बचायी, यह उसी वीर की कहानी है—

भाई ने भी छोड़ दिया
पर रखा देश का पानी है
पाठक ! पढ़ लो उसी वीर की
हमने लिखी कहानी है।

प्रारम्भ में कवि ने उन घटनाओं का विस्तृत वर्णन किया है, जिनकी वजह से *हल्दीघाटी* का युद्ध हुआ। पहली घटना राणा प्रताप ओर शक्तिसिंह के बीच की है। इन दोनों में एक दिन शिकार खेलते समय राजपूती शान के कारण वैमनस्य पैदा हो गया। ये दोनों शिकार के लिए निकले थे। शिकार के दौरान राणा प्रताप और शक्तिसिंह के बीच एक शेर आ गया। राणा प्रताप ने शक्तिसिंह को शेर का आखेट करने से यह कहकर मना किया कि यह उनका लक्ष्य है। इस पर दोनों राजपूतों में आन-बान कोलेकर ठन गयी। दोनों ने एक-दूसरे को ललकारा और भीषण-युद्ध की ज्वाला भड़क उठी—

कूद पड़े वे अहंकार से
भीषण-रव की ज्वाला में
रण-चण्डी भी उठी रक्त
पीने को भरकर प्याला में ॥

भाई-भाई के बीच बढ़ती हुई तकरार और ललकार के देखकर कुल-पुरोहित श्रीनारायण ने बीच-बचाव का प्रयत्न किया, किन्तु जब उसे लगा कि दोनों में युद्ध होकर रहेगा और वे दोनों आपस में लड़कर मर-कट जाएँगे, तो उसने उनके सामने ही आत्महत्या कर ली। इससे दोनों के बीच भड़कती हुई युद्ध-ज्वाला थोड़ी देर के लिए शान्त हो गयी। दोनों पश्चात्ताप के समुद्र में डूब गये, किन्तु थोड़ी देर बाद राणा प्रताप का क्रोध उबल पड़ा और उन्होंने कहा—"शक्तिसिंह! अब तुम मेवाड़ छोड़ दो, अब तुमसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। आज तुम्हारे ही कारण इस प्रकार का अनर्थ हुआ है।" महाराणा प्रताप से अपमानित होकर शक्तिसिंह अकबर के दरबार में पहुँचा और राणा प्रताप को इसका फल चखाने की युक्ति में लग गया। कवि का कहना है कि *हल्दीघाटी* के युद्ध का एक कारण यह बन्धु-विरोध भी है—

गया बन्धु, पर गया न गौरव
अपनी कुल परिपाटी का।
यह विरोध भी कारण है
भीषण-रण हल्दीघाटी का ॥

हल्दीघाटी की लड़ाई का दूसरा बड़ा कारण अकबर द्वारा मीनाबाज़ार लगवाना और मेवाड़ की स्त्रियों की अस्मत को लूटना भी था। शिशौदिया कुल की ललनाओं के साथ अकबर जब-जब इस प्रकार के दुराचार करता था और उनकी करुण पुकार जब-जब राणा प्रताप के कानों में पड़ती थी, तब-तब वे उसके अत्याचार को समाप्त करने के लिए अपनी तलवारें उठा लेते थे—

जब प्रताप सुनता था ऐसी
सदाचार की करुण पुकार।
रण करने के लिए म्यान से
सदा निकल पड़ती थी तलवार॥

सम्पूर्ण हिन्दुस्तान को अपने अधीन करने की अकबर की लालसा और उसकी कूटनीतिक चालें भी हल्दीघाटी के युद्ध और राणा प्रताप से वैमनस्य का कारण बनीं। अकबर ने दीन-इलाही धर्म चलाकर सभी धर्मों के प्रति जो अपना आदर-भाव दिखाया, उसके मूल में उसकी जो साम्राज्यवादी मनोवृत्ति कार्य कर रही थी, उसको भाँपकर राणा प्रताप ने उसका विरोध किया, साथ ही उन्होंने अकबर की अधीनता भी स्वीकार करने से इनकार कर दिया। राणा प्रताप की स्वाधीनता अकबर के हृदय में काँटे-सी चुभती रहती थी। जिसका झण्डा नभ की छाती पर फहर रहा हो, उसके सामने कोई अपना झण्डा लहराये, यह उसको गवारा न था—

जग के वैभव खेल रहे थे
मुग़ल-राज-थाती पर।
फहर रहा था अकबर का
झण्डा नभ की छाती पर ॥
यह प्रताप, यह विभव मिला
पर एक मिला था वादी।
रह-रहकर काँटों-सी चुभती थी
राणा की आज़ादी ॥

इसी बची अकबर ने अपने सेनापति मानसिंह को शोलापुर की विजय के लिए भेजा। शोलापुर को जीतने के बाद लौटते समय विजयोन्माद से भरे मानसिंह राणा प्रताप से मिलने के लिए यह सोचकर गये कि यदि राणा प्रताप उनका मान-सम्मान करेंगे तब तो उनकी ख़ैर है, अन्यथा उनसे भी रण-क्षेत्र में निपट कर अपनी ज्वाला

को वह शान्त कर लेंगे। राणा प्रताप ने अपने पुत्र से मानसिंह का हर तरह से स्वागत तो करवाया, किन्तु सिर-दर्द का बहाना बनाकर वे उसके साथ भोजन करने के लिए नहीं आए। मानसिंह ने इसे अपना घोर अपमान समझा और युद्ध की चेतावनी देते हुए कहा—

कुशल नहीं राणा प्रताप का
मस्तक की पीड़ा से।
भहर उठेगा अब भूतल,
रणचण्डी की क्रीड़ा से ॥

यह सुनकर राणा प्रताप अपने महल से बाहर आ गये और मानसिंह को धिक्कारते हुए उच्च स्वर में बोल पड़े—

अरे तुर्क, बकवाद करो मत
खाना हो तो खाओ।
या बधना का ही शीतल-जल
पीना हो तो जाओ ॥
जो रण को ललकार रहे हो
तो आ कर लड़ लेना।
चढ़ आना यदि चाह रहे
चित्तौड़ वीरगढ़ लेना ॥
कहाँ रहे जब स्वतंत्रता का
मेरा बिगुल बजा था
जाति-धर्म के मुझ रक्षक को
तुमने क्या समझा था ॥

इसी बीच एक वीर सिपाही भी मानसिंह पर व्यंग्य-बाण छोड़ते हुए बोल उठा—

करो न बकझक लड़कर ही
अब साहस दिखलाना तुम;
भगो, भगो, अपने फूफे को
भी लेते आना तुम ॥

इस व्यंग्य-बाण से मानसिंह बहुत मर्माहत हुआ और उसने चेतावनी देते हुए कहा—

ऐ प्रताप, तैयार रहो मिटने
के लिए रणों में।

हाथों में हथकड़ी पहनकर
बेड़ी निज चरणों में ॥

मानसिंह चला गया। राणा प्रताप ने गंगाजल से अपने घर को धुलवाया। कवि का कहना है कि मानसिंह का यह अपमान ही हल्दीघाटी की लड़ाई का मुख्य कारण था–

राणा द्वारा मानसिंह का
यह जो मान-हरण था
हल्दीघाटी के होने का
यही मुख्य कारण था ॥

इस तरह पाँच सर्गों में हल्दीघाटी के युद्ध के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। बाद के सर्गों में मानसिंह का अकबर के सामने जाकर अपने अपमान का बयान करना, अकबर द्वारा राणा प्रताप पर चढ़ाई करने के लिए मानसिंह और शक्तिसिंह को आदेश देना, महाराणा प्रताप का युद्ध के लिए सैनिकों को तैयार करना, मानसिंह का आक्रमण, भीलों द्वारा उनका पकड़ा जाना, राणा प्रताप द्वारा उन्हें मुक्त करना, हल्दीघाटी में राणा प्रताप और मानसिंह की सेना का भीषण युद्ध, युद्धभूमि में राणा प्रताप के चेतक नाम के घोड़े का अद्भुत रण-कौशल, झाला द्वारा राणा को बचाना, रणक्षेत्र में शक्तिसिंह का राणा से मिलना, क्षमा याचना करना, चेतक का निधन, राणा का अपने परिवार के साथ जंगल में भाग जाना, घास की रोटी खाकर जीवन बिताना, जंगली विलाव द्वारा रोटी उठा ले जाने पर पुत्री के करुण-रुदन से दुखी महाराणा प्रताप का अकबर को सन्धि-पत्र लिखना, पत्नी द्वारा उसका विरोध करना, राणा प्रताप को प्रभूत सम्पत्ति देकर भामाशाह द्वारा मदद करना, राणा प्रताप द्वारा पुनः सैन्य-संगठन करके कुम्भलगढ़ पर विजय प्राप्त करना और उसके बाद एक साल के भीतर ही अपने सारे गढ़ों को पुनः जीत लेना आदि घटना-प्रसंगों का विस्तापरपूर्वक वर्णन हुआ है। इन प्रसंगों में कुछ प्रसंग अत्यन्त मार्मिक हैं, जैसे–हल्दीघाटी में राणा प्रताप ओर मानसिंह की सेना के बीच घमासान युद्ध, युद्धभूमि में राणा प्रताप के चेतक नाम के घोड़े का अद्भुत रण-कौशल, चेतक का निधन, जंगली विलाव द्वारा घास की रोटी उठा ले जाने पर राणा की पुत्री का रुदन, राणा प्रताप द्वारा सन्धि-पत्र लिखना और पत्नी द्वारा विरोध। इन प्रसंगों के वर्णन में कवि ने अद्भुत वर्णन-कौशल और मार्मिक भाव-व्यंजना का परिचय दिया है। हल्दीघाटी में राणा-प्रताप और मानसिंह की सेना के बीच हुए घमासान युद्ध के वर्णन में बड़ी सजीवता और बिम्बात्मकता है–

चिग्घाड़ भगा भय से हाथी
लेकर अंकुश पिलवान गिरा।

झटका लग गया, फटी झालर
हौदा गिर गया, निशान गिरा॥

कोई नतमुख बेजान गिरा
करवट कोई उत्तान गिरा।
रण-बीच अमित भीषणता से
लड़ते-लड़ते बलवान गिरा ॥

युद्ध-स्थल में महाराणा प्रताप के चेतक नाम के घोड़े ने जो बहादुरी और रण-कौशल दिखाया, वह तो अद्भुत और रोमांचकारी है—

रणबीच चौकड़ी भर-भरकर
चेतक बन गया निराला था।
राणा प्रताप के घोड़े से
पड़ गया हवा का पाला था ॥

गिरता न कभी चेतक-तन पर
राणा प्रताप का कोड़ा था।
वह दौड़ रहा अरि-मस्तक पर
या आसमान पर घोड़ा था ॥

जो तनिक हवा से बाग हिली
लेकर सवार उड़ जाता था।
राणा की पुतली फिरी नहीं
तब तक चेतक मुड़ जाता था ॥

कौशल दिखालाया चालों में
उड़ गया भयानक भालों में।
निर्भीक गया वह ढालों में
सरपट दौड़ा करवालों में॥

है यहीं रहा, अब यहाँ नहीं
वह वहीं रहा, है -वहाँ नहीं।
थी जगह न कोई जहाँ नहीं
किस अरि मस्तक पर कहाँ नहीं ॥

बढ़ते नद-सा वह लहर गया
वह गया गया, फिर ठहर गया
विकराल वज्रमय बादल-सा
अरि की सेना पर घहर गया ॥

चेतक के इस रण-कौशल को देखकर सारा वैरी-समाज दंग रह गया, लग रहा था कि वह घोड़ा नहीं, राणा प्रताप का कोई वीर सैनिक है, जो शत्रु-दल पर पूरे जोश और पौरुष के साथ टूट पड़ा है। चेतक के इस रण-कौशल के साथ ही राणा प्रताप की तलवार भी अपना करिश्मा दिखा रही थी—

क्षण इधर गई क्षण उधर गई,
क्षण चढ़ी बाढ़-सी उतर गई।
था प्रलय, चमकती जिधर गई,
क्षण शोर हो गया किधर गई ॥

क्या अजब विषैली नागिनी थी
जिसके डसने में लहर नहीं।
उतरी तन से मिट गये वीर
फैला शरीर में ज़हर नहीं ॥

लहराती थी सिर काट-काट
बल खाती थी भू पाट-पाट।
बिखराती अवयव बाट-बाट
तनती थी लोहू चाट-चाट ॥

राणा प्रताप का भाला भी पूरे जोश से लड़ रहा था—

तनकर भाला भी बोल उठा
राणा मुझको विश्राम न दे।
वैरी का मुझसे हृदय गोथ
तू मुझे तनिक आराम न दे॥

खाकर अरि-मस्तक जीने दे
वैरी उर-माला सीने दे।
मुझको शोणित की प्यास लगी
बढ़ने दे, शोणित पीने दे ॥

चेतक, तलवार और भाला के साथ राणा ने युद्ध-क्षेत्र में दुश्मनों पर जो कहर ढाया उससे धरती क्षण भर में हाथियों के सुण्डों, घोड़ों के विकल वितुण्डों से और नर-मुण्डों से पट गई—

क्षण भर में गिरते रूण्डों से
मदमस्त गजों के सुण्डों से
घोड़ों के विकल वितुण्डों से
पट गई भूमि नरमुण्डों से ॥

अद्भुत रण-कौशल और पराक्रम के बावजूद राणा प्रताप युद्ध में हार गये। भागते समय रास्ते में उनके वीर चेतक ने दम तोड़ दिया। शोक-विह्वल राणा ने चेतक से प्रार्थना की–

अभी न तू मुझसे मुख मोड़
तू न इस तरह नाता तोड़।
इस भवसागर बीच अपार,
दुःख सहने के लिए न छोड़ ॥

किन्तु सुख-दुःख के इस साथी ने राणा प्रताप का साथ छोड़ ही दिया। मुसीवत की इस घड़ी में राणा को शक्तिसिंह जैसा बिछुड़ा हुआ बन्धु तो मिल गया, किन्तु चेतक जैसा बन्धु छूट गया। चेतक से पहले रामप्रसाद नामक गज चल बसा था। राणा प्रताप के लिए चेतक का निधन एक घोड़े का निधन नहीं था, बल्कि वह तो राजस्थान की मुक्ति और राणा प्रताप के मान-सम्मान के रक्षक का दुखद अन्त था–

किस पर देश करे अभिमान
किस पर छाती हो उत्तान।
भाला मौन, मौन असि म्यान
इस पर कुछ तो तू कर ध्यान ॥

चेतन के निधन पर राणा प्रताप का इस प्रकार का विलाप *रामचरितमानस* के लक्ष्मण-मूर्छा-प्रसंग में राम के विलाप की याद ताज़ा कर देता है। "हाँ, उठ जा, तू मेरे बन्धु" पंक्ति मानस की पंक्ति को स्मृति-पटल पर आलोकित कर देती है–"सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई।" हल्दीघाटी के संग्राम में राणा प्रताप और चेतक का रण-कौशल और पराक्रम सबके लिए आश्चर्य का विषय बना हुआ था। ऐसे चेतक को खोकर राणा प्रताप का शोक-मग्न हो जाना स्वाभाविक ही था। बन्धु जैसे चेतक के निधन पर 'भारत का सरताज' थोड़ी देर के लिए यदि जीवन और राज-काज से उदासीन हो जाता है तो उसे किसी भी तरह से अनुचित नहीं कहा जा सकता–

लेकर क्या होगा अब राज
क्या मेरे जीवन का काज?
पाठक, तू भी रो दे आज
रोता है भारत-सिरताज ॥

हल्दीघाटी के युद्ध में पराजित होकर राणा प्रताप इधर-उधर भागते हुए जंगलों की ख़ाक छानने लगे। स्वतन्त्रता के प्रेमी को रूखी-सूखी रोटी को कौन कहे, कभी-कभी घास की रोटी का भी नसीब होना मुश्किल हो गया–

दो दिन पर मिलती रोटी
वह भी तृण की घासों की।
कंकड़ पत्थर की शय्या
परवाह न आवासों की॥

फिर भी उनका प्रण जस का तस बना रहा। वे मातृ-भूमि के लिए निरन्तर क़ुर्बानी पर क़ुर्बानी देते रहे ओर मेवाड़-भूमि के उद्धार के लिए सतत् प्रयत्न करते रहे किन्तु उस दिन उनकी हिम्मत जवाब दे गयी, जिस दिन उन्होंने अपनी बच्ची को भूख से व्यथित होकर रोते देखा–

लाशों पर लाशें देखीं
घायल कराहते देखे।
अपनी आँखों से अरि को
निज दुर्ग ढहाते देखे॥

तो भी उस वीर-व्रती का
था अचल हिमालय-सा मन।
पर हिम-सा पिघल गया वह
सुनकर कन्या का क्रन्दन॥

बच्ची को गोद में उठाकर जब राणा प्रताप ने उससे रोने का कारण पूछा तो उसने अपनी तोतली भाषा में जो कुछ कहा, उससे राणा प्रताप का दिल दहल गया–

हा छही न जाती मुझछे
अब आज भूख की ज्वाला।
कल छे ही प्याछ लगी है
हो लहा हिदय मतवाला॥

माँ ने घाछों की लोती
मुझको दी थी खाने को।
छोते का पानी दे कल
वह बोली भग जाने को॥

अम्मा छे दूल यहीं पल
छूकी रोटी खाती थी
जो पहले छुना चुकी हूँ
वह देछ-गीत गाती थी॥

छच कहती केवल मैंने
एकाध कवल खाया था।

तब तक बिलाव ले भागा
जो इछलिए आया था ॥

छुनती हूँ तू लाजा है
मैं प्याली छौनी तेली।
क्या दया न तुझको आती
यह दछा देख कल मेली॥

बच्ची की इन बातों को सुनकर राणा प्रताप का रहा-सहा धैर्य जाता रहा। वे यह सोचने के लिए विवश हो गये कि यह कैसी आज़ादी है, जिसके लिए उन्होंने अपने साथ ही सबको दुःख के सागर में डुबो रखा है। वे तुरंत अकबर को सन्धि-पत्र लिखने के लिए बैठ गये। पत्र लिखने के लिए उद्यत राणा प्रताप के हाथ को तुरन्त रानी ने पकड़ लिया और कहा—"तू भारत का गौरव है, तू जननी-सेवा-रत है, तू ही मानवता का जीवन और सतियों का आँचल है, तू ही भारत है, यदि तू ही कायर बनकर वैरी से सन्धि कर लेगा तो भारत-भूमि का भार कौन धारण करेगा? तेरा अनुगमन करते हुए न जाने कितने युवकों ने अपनी जानें दे दीं, न जाने कितनी माताओं की गोदी सूनी हो गयी, और न जाने कितनी स्त्रियाँ विधवा हो गयीं। आज़ादी का लालच देकर तुमने झाला के प्राण लिये हैं, चेतक-सा-वाजि गँवाया है, यह बताओ यह सन्धि-पत्र लिखने का तुम्हें कितना अधिकार है, जबकि बन्दी माँ की आँखों से आज भी आँसू बह रहे हैं—

तू सन्धि-पत्र लिखने का
कह कितना है अधिकारी।
जब बन्दी माँ के दृग से
अब तक आँसू है जारी॥

रानी ने राणा प्रताप को याद दिलाया कि तुम्हारी इस करनी पर दिवंगत झाला हँस रहा है और वीरगति को प्राप्त चेतक तुम्हें धिक्कार रहा है। यदि तुममें युद्ध करने की सामर्थ्य नहीं रह गयी है तो तलवार मुझे दे दो, मैं चण्डी बनकर अपनी मातृ-भूमि की रक्षा कर लूँगी—

थक गया समर से तो अब
रक्षा का भार मुझे दे।
मैं चण्डी-सी बन जाऊँ
अपनी तलवार मुझे दे।

राणा प्रताप को पुनः अपना विस्मृत प्रताप याद आ गया। रानी का हाथ पकड़कर उन्होंने कहा—

हो गया निहाल जगत् में
मैं तुम-सी रानी पाकर ॥"

यदि बच्ची के रुदन ने राणा प्रताप को कातर बनाकर सन्धि-पत्र लिखने के लिए मजबूर कर दिया तो रानी के उद्बोधन ने उनमें पुनः स्वाभिमान और देश-प्रेम को जगा दिया। वे नये उत्साह से भर तो गये, किन्तु परिस्थिति विकट से विकट होती गयी। वन-वन भटकते हुए राणा प्रताप जर्जर होने लगे, सैनिकों का अभाव होने लगा और उन्हें विश्वास होने लगा कि वे अब मेवाड़ में रहकर अपना संघर्ष जारी न रख सकें। उन्होंने मेवाड़ छोड़ने का निर्णय कर लिया। रानी और बच्ची के साथ मातृभूमि को प्रणाम करके वे जाने ही वाले थे कि रत्नों, मणियों और मणिमुद्राओं से भरा हुआ थैला लेकर भामाशाह आ गये और उनके चरणों में उसे उड़ेल कर कहा—

एकत्र करो इस धन से
तुम सेना वेतन-भोगी।
तुम एक बार फिर जूझो
अब विजय तुम्हारी होगी ॥

विपत्ति के समय भामाशाह की इस मदद ने राणा प्रताप के जोश को पुनः जगा दिया। मेवाड़ की मुक्ति के लिए भामाशाह का यह दान भारतीय इतिहास के पन्नों पर स्वार्णाक्षरों में अंकित है। भामाशाह के इस दान से मेवाड़-केसरी राणा प्रताप ने अपने गढ़ों को पुनः प्राप्त किया। उन्होंने कुम्भलगढ़ तथा मेवाड़ में केसरिया झण्डा लहराकर राजस्थान की वीर-प्रसवा धरती को उसके पुराने गौरव से मण्डित कर दिया।

हल्दीघाटी वीररस प्रधान महाकाव्य है, किन्तु इस काव्य की वीर-भावना वीरगाथा कालीन वीरता से भिन्न है। इस वीरता का उद्देश्य न तो किसी पड़ोसी राजा को नीचा दिखाना है, न किसी राजकुमारी का अपहरण करना। यह स्वतन्त्रता और स्वाभिमान के लिए सर्वस्व बलिदान करने की उस उदात्त भावना से सम्बन्धित है, जिसका व्यापक रूप राष्ट्रीयता और राष्ट्र-धर्म की रक्षा है। हल्दीघाटी की लड़ाई दो प्रमुख कारणों से हुई—अकबर द्वारा मीनाबाज़ार लगाकर स्त्रियों का लज्जापहरण, 2-भारतीय राजाओं को अपने अधीन करने की अकबर की साम्राज्यवादी नीति। महाराणा प्रताप ने इन दोनों का विरोध किया। उन्होंने अकबर की अधीनता नहीं स्वीकार की, यह बात अकबर के हृदय में काँटे की तरह चुभती रहती थी। शोलापुर की विजय से लौट रहे मानसिंह को राणा प्रताप से जो अपेक्षित मान नहीं मिला, उसका भी कारण राणा प्रताप का स्वाभिमान और कुल-गौरव का ही मान था। कहना चाहिए कि इस घटना ने आग में घी का काम किया। राणा प्रताप द्वारा मानसिंह

के अपमान को सुनकर अकबर ने युद्ध की घोषणा कर दी और "भारत के मुग़ल पठानों" से कहा—

वीरों! अरि को दो ललकार
उठो, उठो ले भीम कटार।
घुसा-घुसा अपनी तलवार
कर दो सीने के उस पार ॥

महा-महा भीषण रण ठान
ऐ भारत के मुग़ल पठान।
रख लो सिंहासन की शान
कर दो अब मेवाड़ मसान॥

है न तिरस्कृत केवल मान
मुगलराज का भी अपमान।
रख लो मेरी अपनी आन
कर लो हृदय-रक्त का पान ॥

अकबर और मानसिंह की दृष्टि से यदि हल्दीघाटी का युद्ध मुग़लराज और मान के अपमान के कारण हुआ तो महाराणा प्रताप के लिए यह मेवाड़ के स्वातन्त्र्य और स्वाभिमान का युद्ध था—

स्वतंत्रता का कवच पहन
विश्वास जमाकर भाला में।
कूद पड़ा राणा प्रताप उस
समर-वह्नि की ज्वाला में ॥

राणा प्रताप ने मेवाड़ की स्वतंत्रता के लिए ही मरने-कटने का संकल्प लिया था—

जब तक स्वतंत्र यह देश नहीं
है कट सकता नख-केश नहीं।
मरने-कटने का क्लेश नहीं
कम हो सकता आवेश नहीं ॥

उनका यह संकल्प भी था कि वे बैरी (अकबर और मानसिंह) को भारतीय जनता में विष-बीज नहीं बोने देंगे और यदि कोई उनकी मातृभूमि को रौंदता है तो वे भी उसे चैन से बैठने नहीं देंगे। उन्होंने मेवाड़ के जवानों को भी यही सन्देश दिया था। मातृभूमि की स्वतन्त्रता और रक्षा लिए अरावली पर्वत पर एकत्र हुए वीर

सैनिकों ने 'भारतमाता' और 'मेवाड़-देश' की जय बोलकर अपने युद्धोत्साह के महत् उद्देश्य को ही स्पष्ट किया—

राणा प्रताप की जय बोले
अपने नरेश की जय बोले।
भारत माता की जय बोले
मेवाड़-देश की जय बोले ॥

राणा प्रताप के साथ-साथ अरावली पर्वत के कोल-भील भी यदि इस युद्ध में सम्मिलित हुए तो उसका कारण देश-भक्ति और उनका स्वातन्त्र्य-प्रेम ही था। मानसिंह के आक्रमण के समय कोल-भीलों ने अपने को संगठित करते समय यही कहा था—

चमका-चमका असि बिजली सम
रंग से शोणित से पर्वत-कण।
जिससे स्वतन्त्र यह रहे देश
दिखला दो वही भयानक रण ॥

हम सब पर अधिक भरोसा है
मेवाड़-देश के पानी का।
वीरो, निज को क़ुर्बान करो
है यही समय क़ुर्बानी का ॥

युद्ध-क्षेत्र में राणा प्रताप के भोले ने, चेतक ने ओर तलवार ने जो वीरोचित भूमिका अदा की है, उसके मूल में भी देश की आन-बान की ही रक्षा का उदात्त भाव है। राणा प्रताप का भाला भी वैरी दल के मस्तक को छेदने और उसका शोणित पीने के लिए *बेताब था। तात्पर्य यह कि हल्दीघाटी की लड़ाई में राणा प्रताप के* साथ-साथ जो भी संघर्षरत थे, वे आज़ादी के दीवाने और उसको अपहृत करनेवाले के रक्त के प्यासे थे। उन सबकी एक ही चिन्ता थी—

कैसे बचे देश-सम्मान
कैसे बचा रहे अभिमान?
कैसे हो भू का उत्थान
मेरे एक लिंग भगवान ॥

स्वतन्त्रता का झण्डा तान
कब गरजेगा राजस्थान।
उधर उड़ रहा था वाजि
स्वामी-रक्षा का कर ध्यान ॥

हल्दीघाटी के भैरव-पथ पर वीर सैनिकों का शोणित, मातृभूमि की अर्चना के लिए बहा था और उनका जीवन खिले हुए फूलों की तरह उसके चरणों में अर्पित हुआ था—

हल्दीघाटी का भैरव-पथ
रंग दिया गया था ख़ूनों से
जननी-पद-अर्चन किया गया
जीवन के विकच प्रसूनों से॥

अभिप्राय यह है कि श्यामनारायण पाण्डेय ने हल्दीघाटी के युद्ध का वीर-रसात्मक वर्णन करके भारतीयों में देश-प्रेम, स्वातन्त्र्य-भावना और राष्ट्र के मान-सम्मान की रक्षा का भाव जागृत करने का सराहनीय प्रयास किया है। उनकी *हल्दीघाटी* स्वातन्त्र्य संग्राम और सर्वस्व बलिदान की महागाथा है। स्वाधीनता के लिए अपना सर्वस्व स्वाहा कर देनेवाले महाराणा प्रताप के शौर्य-पराक्रम और बलिदान को *हल्दीघाटी* में पुनरुज्जीवित करके कवि ने कामना की है—

"मेवाड़-उद्धारक! आज मैं अपने तैंतीस करोड़ सहयोगियों के साथ तुझे जगा रहा हूँ। वीर! तू समाधि की चट्टानों को फेंक दे और गरज कर उठ जा। खल-दल चकित और चिन्तित हो उठे। वैरी का मार्ग मयसिंहासन भय से काँप उठे और पराधीन भारत को उसका खोया हुआ सेनापति मिल जाए।"

स्पष्ट है कि *हल्दीघाटी* की रचना का उद्देश्य लोकमानस में स्वाधीन चेतना का प्रसार करना, राष्ट्र-निर्माण की चेतना पैदा करना, पराधीनता से मुक्ति की अदम्य इच्छा जागृत करना, देश की रक्षा के लिए तप, त्याग और बलिदान का उत्कट भाव भरना, और सात्त्विक वीरभाव को जगाकर जन-जीवन के हित के लिए युद्धोत्साह पैदा करना है। अपने इस उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कवि ने लिखा है—"*हल्दीघाटी* के छन्द निर्झर की तरह अवाध गति से बहते रहें, उनमें वह बिलजी पैदा हो, जिससे मुर्दों की भी भुजाएँ पड़कने लगें, उनसे वह 'टॉनिक' उद्भूत हो, जिससे पढ़नेवालों का ख़ून बढ़ने लगे और वह प्रकाश फूट पड़े, जिससे सारा राष्ट्र जगमगा उठे।" कहना न होगा कि *हल्दीघाटी* राष्ट्रीय जागरण और राष्ट्र-रक्षा यज्ञ में सर्वस्व बलिदान की प्रेरणा देनेवाला और मनुष्य मात्र में स्वाधीनता और राष्ट्रीयता का पवित्र भाव भर देनेवाला काव्य है । महाराणा प्रताप के राष्ट्र-नायकत्व में किसी भी देश-जाति का स्वाधीनचेता नायक विद्यमान है और उसमें मुक्तिकामी जनता में उपयुक्त संघर्षचेतना उत्पन्न करने की अभूतपूर्व क्षमता है। *हल्दीघाटी* को समाप्त करते हुए कवि ने पृथ्वी के अघ-भार को समाप्त करने के लिए जिस राणा-सदृश शक्ति, जननी-चरण अनुरक्ति और भाला सदृश देश-भक्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की है, वही उसकी रचना का मूल सन्देश है—

राणा-सदृश तू शक्ति दे
जननी-चरण-अनुरक्ति दे।
या देश-सेवा के लिए
झाला-सदृश ही भक्ति दे ॥

"*हल्दीघाटी* की कथा यद्यपि ऐतिहासिक है, किन्तु श्यामनारायण पाण्डेय ने उसे कल्पना-रंजित करके प्रस्तुत किया है। महाराणा प्रताप और शक्तिसिंह का शिकार खेलना, सिंह को अपना-अपना लक्ष्य मानकर आपस में तकरार कर बैठना, दोनों के बीच बनती हुई युद्ध की परिस्थिति को टालने के लिए कुलविप्र द्वारा आत्महत्या कर लेना और दोनों भाइयों के बीच पैदा हुए इस विवाद को हल्दीघाटी युद्ध का कारण बताना आदि बातें ऐतिहासिक तथ्य नहीं हैं। यह घटना जनश्रुतियों पर आधारित है। वैसे यह ऐतिहासिक तथ्य है कि महाराणा प्रताप के जगमल, शक्तिसिंह, सगर आदि भाई बहुत पहले उनसे नाराज़ होकर अकबर से मिल गये थे और राणा प्रताप को अपना वैरी मान बैठे थे। दरअसल महाराणा प्रताप के पिता उदयसिंह ने ही उनके रास्ते में भाइयों की फूट के काँटे बो दिये थे। अपने देहान्त से पहले उन्होंने अपनी प्रिय रानी भटयाणी के पुत्र जगमल को अपना उत्तराधिकारी बना दिया था लेकिन उदयसिंह की मृत्यु के बाद सूबेदारों ने राणा प्रताप को ही 'राणा' बनाया। इस घटना से जगमल नाराज़ होकर अजमेर चला गया। वहाँ के मुसलमान सूबेदार ने उसे शरण दी और अकबर से उसकी भेंट करायी। अकबर से मिलकर जगमल महाराणा प्रताप का शत्रु बन गया।"[1] श्यामनारायण पाण्डेय ने इतिहास के इन तथ्यों को छोड़कर शिकार खेलने के दौरान उत्पन्न हुए वैमनस्य का चित्रण करके केवल यह रेखांकित करने की कोशिश की है कि भारतीय राजपूत किस प्रकार छोटी-छोटी बातों में आन-बान की ख़ातिर एक-दूसरे के रक्त के प्यासे हो जाते थे।

हल्दीघाटी में युद्ध का स्पष्ट और मुख्य कारण मानसिंह का अपमान बताया गया है, साथ ही यह भी कहा गया हे कि अकबर द्वारा दीन-इलाही धर्म चलाने और मीना बाज़ार लगवाने से भी इस युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार हुई थी। इन तथ्यों को कई इतिहासकार सही मानते हैं, किन्तु इन्हीं के साथ वे यह भी बताते हैं कि अकबर और राणा प्रताप के बीच उसी दिन दुश्मनी का काँटा उग आया था, जिस दिन राणा प्रताप को जगमल की जगह 'राणा' का ख़िताब मिला था। डॉ. रघुवीर सिंह ने लिखा है—"राज्यारूढ़ होते ही राणा प्रताप ने स्पष्टतया मुग़लविरोधी नीति अंगीकार की और यों मेवाड़ के ही नहीं, राजस्थान के इतिहास में भी एक महत्त्वपूर्ण स्फूर्तिदायक अध्याय का प्रारम्भ हुआ, जो कठोर पराधीनता के गहरे निराशापूर्ण दुखमय दिनों में राजस्थान के साथ ही समूचे भारत को स्वाधीनता के लिए सर्वस्व बलिदान कर

1. *राजस्थान का इतिहास* : बी.एम.दिवाकर : पृ. 197-198.

उसकी अडिग साधना का पाठ पढ़ाता रहा।[1] बी.एम. दिवाकर की पुस्तक *राजस्थान का इतिहास* से यह भी पता चलता है कि अकबर ने महाराणा प्रताप से मित्रता करने के लिए चार प्रयत्न किये थे, जिनमें एक प्रयत्न मानसिंह का भी था। अपने इस प्रयत्न में असफल होने और राणाप्रताप द्वारा अपमानित होने पर मानसिंह ने हल्दीघाटी-युद्ध में अकबर के सेनापति के रूप में संघर्ष किया। श्यामनारायण पाण्डेय ने मानसिंह के अपमान की घटना को हल्दीघाटी के युद्ध के प्रमुख कारण के रूप में तो चित्रित किया, किन्तु उसके उस प्रयत्न की चर्चा नहीं की, जो राणा प्रताप और अकबर के बीच मित्रता स्थापित करने के लिए किया गया था। यदि कवि ने इस तथ्य को ठीक से उभारा होता तो अकवर की साम्राज्यवादी नीति का पर्दाफ़ाश कुछ अधिक स्पष्टता के साथ होता, राणा प्रताप की स्वाधीन चेतना का प्रखरता के साथ बोध होता और 'हल्दीघाटी' के युद्ध का सम्बन्ध केवल भोजन में साथ न देने के अपमान-मात्र से जुड़कर न रह जाता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राणा प्रताप के मन में मानसिंह और अकबर के बीच स्थापित रोटी-बेटी वाले सम्बन्ध की कड़वाहट तो थी ही, अकबर के साथ सन्धि करने का उनका प्रस्ताव भी अत्यधिक उत्तेजनाकारी था। यदि कवि ने इस घटना को सम्पूर्णता में चित्रित किया होता तो ऐतिहासिकता की तो रक्षा होती ही, कथा में भी काफ़ी गम्भीरता आ जाती।

राणा प्रताप से अपमानित होकर मानसिंह ने अकबर के सामने जिस तरह से रुदन किया है, वह उसके पराक्रमी व्यक्तित्व के प्रतिकूल है। इतिहासकारों का कहना है कि मानसिंह बल, पराक्रम, साहस, धैर्य और वीरता में किसी से कम न था। उसकी ऐतिहासकि विजयों और अद्भुत रण-कौशल से इस तथ्य की पुष्टि भी होती है। श्यामनारायण पाण्डेय ने मानसिंह को वह महत्त्व नहीं दिया है, जिसका वह अधिकारी था। यदि वे चाहते तो मानसिंह की वीरता का समुचित उल्लेख करके भी राणा प्रताप के व्यक्तित्व को निखार सकते थे। युद्धस्थल में झाला द्वारा राणा प्रताप के राजछत्र को स्वयं धारण करके उनकी जान बचाने की घटना तो ऐतिहासिक है, किन्तु शक्तिसिंह द्वारा राणा प्रताप से क्षमायाचना करना और उन्हें अपना घोड़ा देना इतिहास-पुष्ट तथ्य नहीं है। इसी तरह भामाशाह द्वारा महाराणा प्रताप की आर्थिक मदद करना तो इतिहास-पुष्ट घटना है, किन्तु उसे कल्पनारंजित करके अधिक काव्यात्मक बना दिया गया है। तात्पर्य यह है कि कवि ने ऐतिहासिक तथ्यों को काव्यात्मक बनाने के लिए काफ़ी छूट ली है। उसके वर्णनों को इतिहास-पुष्ट सिद्ध करने में काफ़ी दिक़्क़तें आ सकती हैं, किन्तु यदि हम इतिहास, जनश्रुति और कल्पना के मिश्रण से तैयार काव्यात्मक कथा का आनन्द लेना चाहें तो हमें निराशा न होगी। *हल्दीघाटी* में कवि का उद्देश्य इतिहास का तथ्यात्मक अंकन न होकर

---

1. *पूर्व आधुनिक राजस्थान* : डॉ. रघुवीर सिंह : पृ. 49.

उसके प्रेरणादायी अंश को काव्यात्मक बनाकर प्रस्तुत करना है। इसके लिए उसने इतिहास और जनश्रुतियों से प्राप्त घटनाओं एवं तथ्यों को अपनी भावना के अनुकूल कल्पना से और अधिक प्रभावशाली एवं रंजक बनाकर प्रस्तुत किया है, इतना अवश्य है कि कवि ने इतिहास के तथ्यों के साथ न तो अनावश्यक छेड़-छाड़ की है, न ही लोक-विश्वास को उपेक्षित किया है। कहा जा सकता है कि *हल्दीघाटी* का इतिवृत्त इतिहास, लोकमान्यता और कवि-कल्पना के ताने-बाने से बनी हुई ऐसी प्रवाहपूर्ण कथा है, जिसमें इनके सन्धि-स्थलों को बहुत बारीक निगाह से ही देखा जा सकता है।

जौहर

"स्त्री जाति का सौन्दर्य सोने-चाँदी, हीरे-मोती के गहनों और पारदर्शी कपड़ों से वन्दनीय नहीं होता, वह तो सतीत्व के पवित्र तेज से अभिनन्दनीय होता है।" *जौहर* की रचना में श्यामनारायण पाण्डेय की यही दृष्टि सक्रिय रही है। नारी-सम्बन्धी अपनी दृष्टि और *जौहर* के रचना-उद्देश्य पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा है—"सृष्टि का दूसरा नाम ही नारी है। यदि नारी परम पावन है तो उसकी सन्तान भी पवित्र होगी, समाज पवित्र होगा, वंश की मर्यादा बढ़ेगी और साथ ही देश का गौरव भी जीवित रहेगा। इसीलिए मैंने कीर्ति की तरह पवित्र, सीता-सावित्री की तरह पतिव्रता और दुर्गा की तरह वीरांगना महारानी पद्मिनी के चरित्र को अक्षरों में बाँधने का प्रयत्न किया है, ताकि देश की भटकती हुई नारियाँ पद्मिनी को समझें, उसकी पवित्रता अपने जीवन में उतारें और उसके शौर्य-साहस को नस-नस में भर लें। अन्य देशों के लिए भारतीय परिवार की पवित्रता उदाहरण बन जाए—

> पट में तन-तन में नवयौवन, नवयौवन में छविमाला हो।
> छविमाला के भीतर जलती पावन सतीत्व की ज्वाला हो ॥

—(*आधुनिक कवि*-17, भूमिका पृ. 11)

स्पष्ट है कि श्यामनारायण पाण्डेय ने *जौहर* की रचना भारतीय स्त्रियों में सतीत्व का भाव भरने और उन्हें सन्मार्ग पर चलते रहने का सन्देश देने के लिए की है। इसमें चित्तौड़ की महारानी पद्मिनी के लोक-ख्यात सतीत्व की गौरवगाथा का चित्रण हुआ है। महारानी पद्मिनी ने तत्कालीन सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के नापाक इरादों को विफल करने के लिए हज़ारों स्त्रियों के साथ आत्मदाह कर लिया था। उस 'जौहर-ज्वाला' को प्रबन्धात्मक रूप में प्रस्तुत करने के लिए कवि ने इक्कीस चिनगारियों (सर्गों) की योजना की है। ये चिनगारियाँ क्रमशः इस प्रकार हैं—'परिचय', 'युद्ध', 'उन्माद', 'आखेट', 'दरबार', 'स्वप्न', 'उद्बोधन', 'डोला', 'मुक्ति', 'पुनर्युद्ध', 'चिन्ता', 'चित्तौड़ी', 'ध्वंस', 'आदेश', 'शृंगार', 'विदा', 'अर्चना',

'जौहर', 'व्रत', 'प्रवेश' और 'दर्शन'। इन चिनगारियों में *जौहर* की कथा को पर्याप्त क्रमबद्धता एवं स्वाभाविक प्रवाह के साथ प्रस्तुत किया गया है।

जौहर की पूरी कथा पुजारी और पथिक के संवाद के रूप में लिखी गयी है। "*श्रीमद्‌भागवत* की संकल्पित कथा जिस पवित्रता और श्रद्धा के साथ पौराणिक व्यास तीर्थ से लौटे हुए अपने यजमान को सुनाता है, उसी तरह पुलक-पुलक कर भावुक पुजारी ने अधिकारी पथिक को *जौहर* की कथा सुनायी है।" (*जौहर*, भूमिका, पृ. 28) कवि का कहना है कि "पाठक के मानस-मन्दिर में यदि पद्मिनी की पावन प्रतिमा और आँखों के सामने पुजारी और पथिक का वह दृश्य न रहा तो *जौहर* की चिनगारियों का ताप असह्य हो जाएगा और यदि रहा तो चिनगारियों से आँखों को ज्योति मिलेगी–अपनी संस्कृति, अपनी कुल-मर्यादा और अपने स्वाभिमान को देखने के लिए।"(वही, पृ. 28)।

पुजारी (जो स्वयं कवि है) को पूजा की थाल सजाकर जाते हुए देखकर पथिक ने पूछा–

थाल सजाकर किसे पूजने
चले प्रात ही मतवाले
कहाँ चले तुम राम नाम का
पीताम्बर तन पर डाले?

उसने पुजारी से यह भी कहा कि इधर न तो गंगासागर है, न काशी है फिर तुम किस तीर्थ के दर्शन के लिए निकले हो? पुजारी ने कहा–

मुझे न जाना गंगासागर
और न रामेश्वर काशी।
तीर्थराज चित्तौड़ देखने को
मेरी आँखें प्यासी ॥

जहाँ आन पर माँ बहनों की
जला-जला पावन होली।
वीर माड़वी गर्वित स्वर से
जय माँ की जय जय बोली ॥

सुन्दरियों ने जहाँ देश-हित
जौहर-व्रत करना सीखा।
स्वतन्त्रता के लिए जहाँ
बच्चों ने भी मरना सीखा ॥

वहीं जा रहा पूजा करने
लेने सतियों की पद-धूल।

वहीं हमारा दीप जलेगा
वहीं चढ़ेगा माला-फूल ॥

जहाँ पद्मिनी जौहर-व्रत कर
चढ़ती चिता की ज्वाला पर।
क्षण भर वहीं समाधि लगेगी,
बैठ इसी मृगछाला पर ॥

इस तरह आरम्भ में 'परिचय' के अन्तर्गत कवि ने *जौहर* काव्य की कथा और उसकी महत्ता का निर्देश करके पथिक और पाठक में कुतूहल जगा दिया। पथिक भी अपनी राह भूलकर पुजारी के साथ लग गया और उसमें रानी पद्मिनी की जौहर कथा को जानने की उत्कट इच्छा पैदा हो गयी। उसने पुजारी से विस्तार से उसकी कथा को बताने का अनुरोध किया। पथिक के अनुरोध पर पुजारी ने बताया कि पद्मिनी चित्तौड़ के राजा रतनसिंह की पत्नी थी। दोनों अप्रतिम सौन्दर्यवाले थे और दोनों में परस्पर अतिशय अनुराग था। वे एक पल का भी विछोह सहने में असमर्थ थे। दोनों की प्रीति और सुन्दरता की चर्चा चतुर्दिक फैली हुई थी। पद्मिनी की रूप-चर्चा को सुनकर तत्कालीन दिल्ली-सुल्तान अलाउद्दीन ख़िलजी ने उसे प्राप्त करने के उद्देश्य से चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी। अलाउद्दीन और रतनसिंह की सेना के बीच घमासान युद्ध हुआ। अलाउद्दीन पराजित होकर भाग तो गया, किन्तु पद्मिनी को प्राप्त करने की उसकी अभिलाषा शान्त नहीं हुई। वह अतिशय कामी था। उसकी काम-पिपासा उन्माद की हद तक पहुँची हुई थी। वह पद्मिनी के साथ विलास करने के लिए आतुर था। वह रात-दिन पद्मिनी के ही सपने देखने लगा। उसने अपने दरबारियों से कहा—

बोला ख़िलजी रूपवती वह
कल परसों तक मिल जाएगी।
नहीं मिली तो रण-गर्जन से
सारी पृथ्वी हिल जाएगी ॥

दरबारियों ने उसकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाई, किन्तु एक दरबारी ने उसे समझाया—

साध्वी परम पुनीता है वह
रामचन्द्र की सीता है वह
अधिक आपसे और कहूँ क्या
रामायण है, गीता है वह ॥

कूद आग में जल जाएगी
गिरि से गिरकर मर जाएगी।

मेरा कहना मान लीजिए,
पर न हाथ में वह आएगी ॥

यह सुनकर अलाउद्दीन एकदम पागल-सा हो गया। उसकी दर्पोक्तियों और गर्जन से सभी दरबारी थर-थर काँपने लगे, इसी बीच मृगया के लिए निकले रतनसिंह को गुप्तचरों ने पकड़ लिया। उन्होंने जब इसकी सूचना अलाउद्दीन को दी तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उन पर हीरे-जवाहरात की वर्षा कर दी और रतनसिंह को क़ैद में डाल देने का आदेश देकर राणा लक्ष्मणसिंह के पास यह पत्र भेज दिया—

तभी मुक्त होगा रावल
आ जाएगी स्वयं पद्मिनी।
सिंहासन पर शोभित होगी,
ख़िलजी की बन राज-संगिनी॥

राणा लक्ष्मणसिंह को जब यह समाचार मिला तो वह आगबूबला हो उठा। उसने दरबारियों से कहा—

काम इतना बढ़ गया उस श्वान का
सिंहनी से ब्याह करना चाहता।
राजपूतों के लिए यह मौत है
वंश का मुँह स्याह करना चाहता ॥

यह समाचार जब पद्मिनी को ज्ञात हुआ तो वह गहरे सोच में डूब गयी, किन्तु जब दरबारियों ने उसे जोश दिलाया और युद्ध के लिए अपनी हर तरह की सन्नद्धता जतायी जो रानी ने भी विकराल रूप धारण कर अपने सैनिकों को युद्ध हेतु तैयार किया, किन्तु उसने सबके समक्ष एक कूटनीतिक चाल चलने का अनुरोध किया। उसने कहा कि जब शत्रु अपनी औकात से बढ़कर काम कर रहा है तो हमें कुछ छल-बल का भी सहारा लेना चाहिए। उसने कहा कि अलाउद्दीन को यह सन्देश भेज दिया जाए कि पद्मिनी उसके पास आने के लिए तैयार है, किन्तु उसके साथ उसकी सात सौ सहेलियाँ भी आएँगी। अलाउद्दीन ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। पद्मिनी जिन सात सौ डोलों के साथ गयी, उनमें सहेलियों की जगह चित्तौड़ के वीर सैनिक अपने हथियारों के साथ बैठे थे। जब रानी अलाउद्दीन के महल में पहुँची और अलाउद्दीन ने रतनसिंह को मुक्त कर दिया तो वे दोनों एकान्त में थोड़ी देर बात करने का बहाना बनाकर चुपके से एक घोड़े पर बैठकर भाग गये। डोले में बैठे हुए वीरों ने अलाउद्दीन को घेर लिया, किन्तु किसी तरह जान बचाकर वह भी भाग निकला। रतनसिंह के दो वीर सेनानियों—गोरा और बादल—के नेतृत्व में अलाउद्दीन की सेना के साथ भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें गोरा शहीद हो गया। अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर पुनः आक्रमण करके उसका विध्वंस कर डाला—

ध्वंस हो गया वीर नगर
गढ़ निर्जीव मसान हुआ।
भीषण गोलाबारी से
दुर्ग शिखर सुनसान हुआ ॥

ऐसी स्थिति में रतनसिंह ने युद्ध-क्षेत्र में मर मिटने और पद्मिनी ने अपने सतीत्व के रक्षार्थ चित्तौड़ की नारियों के साथ जौहर-ज्वाला में भस्म हो जाने का निश्चय कर लिया—

इसलिए मैंने निश्चय किया
जल मरूँगी वंश के अभिमान पर।
साथ ही पतिदेव ने भी तय किया
मर मिटेंगे गुहिल-कुल की आन पर ॥

अपने निश्चय के अनुसार उसने सभी नारियों को जौहर-व्रत करने का आदेश दिया—

भूलकर भी मोह गढ़ का मत करो
आज जौहर का भयंकर व्रत करो।
त्याग-विक्रम वीरता निःसीम कर,
दुर्ग को कर्त्तव्य से उन्नत करो ॥

हों सुहागिन या अभागिन बच्चियाँ
रोहिणी, गौरी अनेक कुमारियाँ।
उस धधकती आग में कूदें मरें
इस तरह से व्रत करें हम नारियाँ ॥

पद्मिनी के इस आदेश का सबने पालन किया। सबने अपना शृंगार किया और वे इस बात से बहुत प्रसन्न हुई कि आज वे रूप की होली खेलेंगी—

इन रूपों की होली होगी
यही सोचकर सुखी हुई।
जौहर-व्रत के लिए विकल
इस ओर सरोरूहमुखी हुई ॥

जब पद्मिनी सज-धजकर जौहर के लिए चली, तब रतनसिंह ने कहा—

बोला, न प्रिये देरी कर
व्रत-भंग न होने पाए।
जो हो पर जौहर-व्रत का
आदर्श न खोने पाए ॥

मैं चला, साथ सखियों के
तू भी धीरे-धीरे चल।
मैं मिटूँ और तू भी तब
जौहर की ज्वाला में जल ॥

रानी ने अपने पति की पूजा की और जौहर-ज्वाला में जलने के लिए चल पड़ी। रतनसिंह भी अपनी तलवार को चमकाता हुआ युद्ध-क्षेत्र के लिए चला गया। जब रानी जौहर के लिए जाने लगी, तब पिंजड़े में बन्द शुक-सारिका ने कहा—

तुम कहो कि पिंजर में क्या
अब भी हम बन्द रहेंगे।
जौहर के अवसर पर भी
बन्दी हम मन्द रहेंगे ॥

रानी ने उन दोनों को पिंजड़े से मुक्त कर दिया, किन्तु वे भी तो चित्तौड़ के ही मानी-स्वाभिमानी प्राणी थे। उन्होंने वहीं तड़प-तड़प कर अपने प्राण त्याग दिये। इसके बाद रानी ने शिव-पार्वती की पूजा-अर्चना की और चिता की जलती ज्वाला के सामने आकर कहा—

मैं जलूँ तो राख को तू
दे उड़ा क्षिति से गगन पर।
पातकी रज छू न पाए
नभ हिले मेरे निधन पर ॥

और विधि से कह, किसी को
रूप दे तो शक्ति भी दे।
पति मिले तो पति-चरण में
भाव भी दे, भक्ति भी दे ॥

यह कहकर रानी चिता पर बैठ गई। इस दृश्य को देखकर चित्तौड़ का क़िला हिल गया, आसमान काँप गया, धरती डगमगा गयी और सारी दिशाएँ सिहर कर बोल उठीं—"जय सती!" रानी रुई की तरह आग में जल गई और उसके बाद एक-एक करके सभी नारियाँ-कुमारियाँ आग में कूदती गई और देखते-देखते चिता-स्थल पर रूप-यौवन की जगह राख की ढेर लग गयी—

इस कठिन व्रत-साधना में
लग सकी क्षण की न देरी।
रूप-यौवन की जगह पर
राख की थी एक ढेरी ॥

उधर रतनसिंह भी लड़ते-लड़ते रणक्षेत्र में खेत रहा। लाशों से धरती पट गयी। लाशों के बीच पद्मिनी को ढूँढ़ता हुआ जब अलाउद्दीन आगे बढ़ा तो उसे एक वृद्धा दिखायी पड़ी, उसने उससे पूछा—

बोल उठा माँ से अभिमानी
कहाँ पद्मिनी रानी है।
मुझे महल का पता बता दो
मेरी विकल जवानी है॥

उस वृद्धा ने जलती हुई चिता की ओर इशारा किया। जैसे ही अलाउद्दीन की दृष्टि उधर गई, उसे अजीब दृश्य दिखाई पड़ा—

धूम-राशि से ज्योति-ज्योति से
निकली सती कटार लिये।
बढ़ी अधम की ओर मौत-सी
आँखों में अंगार लिये।

अलाउद्दीन 'बचाओ-बचाओ' कहकर उस वृद्धा के आँचल में छिपने के लिए दौड़ पड़ा किन्तु तब तक वह अदृश्य हो गयी थी। उसकी जगह पर अष्टभुजा देवी सिंह पर सवार, लाल-लाल जीभ निकाले, उसके रक्त की प्यासी-सी दिखाई पड़ी। यह देखकर अलाउद्दीन बेहोश हो गया। बाद में उसके सैनिक उसको लेकर भाग गये। कवि का कहना है कि इसके बाद अलाउद्दीन के कुकृत्य पर हिन्दुओं और मुसलमानों ने ख़ूब थूका और उसके मुख पर इस कुकर्म की जो कालिख लगी, वह आज तक नहीं धुल सकी है—

हिन्दू-मुसलमान ही क्या, सब
थूक-थूक उस पर बोले।
पर-नारी को गया छेड़ने,
धिक, पापी सेना को ले॥

तब से उसने कहीं न अपने
मुख की कालिख दिखलायी।
आए गये मेघ, पर कालिख
धुली न अब तक धुल पायी॥

श्यामनारायण पाण्डेय ने रानी पद्मिनी के जौहर की इस कथा को बड़ी मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। यह कथा वीर और करुण रस के मिश्रण से तैयार हुई है। यह रुलाती भी है और अपने देश-धर्म की आन-बान पर मर मिटने का उत्साह भी पैदा करती है। यह भारतीय नारी के सतीत्व की ऐसी गौरव-गाथा

है, जिसकी दूसरी मिसाल दुनिया के इतिहास में नहीं मिलती। इस सतीत्व को सती-प्रथा से जोड़कर नहीं देखा जाना चाहिए। महारानी पद्मिनी ने जिस जौहर-व्रत का पालन किया है वह उदात्त जीवन-मूल्य पर आधारित है। इसी बिन्दु पर यह सोचना पड़ता है कि मनुष्य के कुछ ऐसे भी जीवन-मूल्य होते हैं, जिनके लिए वह अपने जीवन को भी सहर्ष उत्सर्ग कर देता है। अलाउद्दीन ख़िलजी कामी और रूप-लोभी था। उसने अपनी काम-पिपासा और रूप-लोभ की तृप्ति के लिए चित्तौड़ पर आक्रमण करके रतनसिंह की पत्नी पद्मिनी को प्राप्त करने का घृणित कोशिश की थी। रतनसिंह और उसके सैनिकों ने देश की आन-बान और सती-धर्म को बचाने के लिए भीषण युद्ध अवश्य किया, किन्तु जब पद्मिनी को लगा कि अब उसका और चित्तौड़ की अन्य स्त्रियों का पातिव्रत खण्डित हो जाएगा, तब उन्होंने जौहर-ज्वाला में अपने को जलाकर भस्म कर देना उचित समझा। चित्तौड़-दुर्ग के ध्वंस के बाद विचार-विमर्श के लिए एकत्र हुए पुरुषों और स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए पद्मिनी ने कहा था—

दुर्ग का वातावरण प्रतिकूल है
नारियों का पातिव्रत भययुक्त है।
क्षत्रियों की आन है सन्देह में,
वंश-गौरव भी न चिन्ता-मुक्त है ॥

ऐसी परिस्थिति में 'पातिव्रत' की रक्षा के लिए पद्मिनी ने जौहर-ज्वाला में जलने का और पति ने 'क्षत्रियों की आन' और 'वंश-गौरव' की रक्षा के लिए युद्ध-क्षेत्र में मर मिटने का व्रत ले लिया—

इसलिए मैंने यही निश्चय किया
जल मरूँगी वंश के अभिमान पर।
साथ ही पतिदेव ने भी तय किया
मर-मिटेंगे गुहिल-कुल की आन पर ॥

उपस्थित स्त्रियों और पुरुषों को भी उसने यह सन्देश दिया—

हो गया गढ़-नाश होगा और भी,
शक न इसमें, इसलिए छँट जाएँ सब।
आन-रक्षा की न औषधि दूसरी
वैरियों को काटते कट जाएँ सब ॥

कहना न होगा कि पद्मिनी का जौहर राष्ट्र, कुल, जाति और पातिव्रत के लिए सोत्साह किया गया ऐसा उत्सर्ग है, जो भारतीय राजपूतों के गौरवशाली इतिहास में एक स्वर्णिम अध्याय जोड़ता है। यहाँ आत्म-बलिदान की बेबसी और लाचारी नहीं है, मौत का सहर्ष और स्वेच्छ्या वरण है। इसे आत्महत्या की संज्ञा देकर कलंकित

नहीं किया जा सकता। जिस तरह देश की सीमा की रक्षा करने के लिए सैनिक आत्मबलि दे देता है, उसी तरह से राजपूताने के पुरुषों और स्त्रियों ने अपने राष्ट्र, कुल और मान-मर्यादा के लिए आत्मोत्सर्ग कर दिया। पराधीनता, बदसलूकी, अन्याय, अत्याचार और अपमान से बचने के लिए उनके पास आत्मदाह के अलावा और कोई विकल्प न था। भारतीय इतिहास की यह दिल को दहला देनेवाली घटना है। इस घटना के आधार पर श्यामनरायण पाण्डेय ने *जौहर* महाकाव्य की रचना करके बीसवीं शताब्दी के भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष को भी गति और ओज प्रदान करने की कोशिश की है। उनकी दृढ़ धारणा है कि पराधीनता की बेड़ी को तोड़ने के लिए जौहर के इस इतिहास से प्रेरणा लेनी ही होगी—

सती-वचन पर गत गौरव से
प्रीति जोड़नी ही होगी।
पराधीनता की बेड़ी
ललकार तोड़नी ही होगी॥

उनका विश्वास है कि—

जभी खुले, बन्दी माँ का यह
बन्धन कभी खुलेगा ही।
जभी धुले, माँ का कलंक
हम सबसे कभी धुलेगा ही॥

'पराधीन माँ का बन्धन खोलने' और उसके 'कलंक को धोने' की प्रेरणा देनेवाली रचना है *जौहर*। मलिक मुहम्मद जायसी ने भी पद्मिनी के इस जौहर का वर्णन किया है, किन्तु उनकी दृष्टि धार्मिक एवं दार्शनिक है। श्यामनारायण पाण्डेय ने भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष के दौरान भारतीयों में राष्ट्रीय भावना को उद्दीप्त करने के उद्देश्य से इस काव्य की रचना की है। उन्होंने 'अग्निकण' के अन्तर्गत जौहर काव्य की कथा को प्रस्तुत करते हुए जो आरम्भिक पंक्तियाँ लिखी हैं, वे उक्त तथ्य की पुष्टि करती हैं—"फूँक दो उस राष्ट्र को, जहाँ स्वाभिमान पर मर मिटनेवाले पुरुष नहीं, आग लगा दो उसे देश में, जहाँ पातिव्रत की रक्षा के लिए धधकती आग में अपने को झोंक देनेवाली स्त्रियाँ नहीं और पीस दो उस समाज को, जो अपना अधिकार दूसरों को सौंपकर बँधे हुए कुत्ते की तरह याचक आँखों से उसकी ओर देखता है।" उन्होंने यह भी लिखा है कि "*जौहर* से साहित्य, देश, जाति और धर्म का क्या लाभ हुआ, यह तो मुझे मालूम नहीं, किन्तु यह अच्छी तरह अवगत है कि इस संघर्ष-काल (स्वाधीनता संघर्ष) में आर्य-संस्कृति के रक्षकों को *जौहर* के छन्दों ने मंत्रों से भी अधिक बल दिया है।" कहना न होगा कि भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष के बलिदानी युवकों ने पद्मिनी के साथ जा रहे सात सौ डोलों के वीरों के इस

प्रयाण-गीत को बार-बार अवश्य गाया होगा–

तुम अजर बढ़े चलो
तुम अमर बढ़े चलो
तुम निडर बढ़े चलो
आन पर चढ़े चलो।

× × ×

लक्ष्य तो महान है
एक इम्तहान है
पर न रंच भय करो
राह रक्तमय करो।

× × ×

आसमान फट चले
मेदिनी उलट चले।
आग की लपट चले
अंग-अंग कट चले।

गर त्रिकूटधर गिरे
सूर छूटकर गिरे।
चाँद फूटकर गिरे
व्योम टूटकर गिरे।

पर न एक दम रुको
पर न एक दम झुको
चाह पर चले चलो
राह पर चले चलो।

श्यामनारायण पाण्डेय के इस कथन में सच्चाई है कि उन्होंने *जौहर* लिखकर अपनी संस्कृति की पूजा की है। उनकी यह संस्कृति है–आर्य-संस्कृति। उनका विश्वास था कि *जौहर* अपनी आर्य-संस्कृति के संरक्षण में सहायक होगा। कहना न होगा कि *जौहर* काव्य ने भारतीय वीरों की शौर्य-गाथा को जन-जन तक तो पहुँचाया ही है, सती रानी पद्मिनी के 'अग्नि स्नान' की पवित्र कथा को भी आधुनिक युग के युवकों और युवतियों के लिए प्रेरणादायी बना दिया है। इतिहासकार कहते हैं कि रानी पद्मिनी की कहानी झूठी है, किन्तु चित्तौड़ की जनता आज भी रानी पद्मिनी के जौहर-स्थल को 'अगिन स्नान' की पवित्र वेदी के रूप में पूजती आ रही है।

यहाँ इस बहस को उठाने की आवश्यकता नहीं महसूस हो रही है कि *जौहर*

की कथा कितनी ऐतिहासिक है और कितनी काल्पनिक। इस सन्दर्भ में इतिहासकारों में काफ़ी मतभेद है, किन्तु अनेक इतिहासकार यह मानते हैं कि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था और उसने चित्तौड़गढ़ को जीत लिया था। वे यह भी मानते हैं कि अलाउद्दीन से संघर्ष करते हुए जब राजा रतनसिंह वीर-गति को प्राप्त हुआ, तब रानी पद्मिनी ने कई स्त्रियों के साथ जौहर की अग्नि में प्राणाहुति दे दी थी। श्यामनारायण पाण्डेय ने अलाउद्दीन को कामी और रूप-लोभी के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने इस कहानी में कुछ नयी कल्पनाओं का भी अंश जोड़ा है, जैसे शिकार खेलते समय अलाउद्दीन के लोगों द्वारा रतनसिंह को गिरफ़्तार करना, लक्ष्मणसिंह का स्वप्न, रतनसिंह का रणक्षेत्र में और पद्मिनी का जौहर-ज्वाला में साथ-साथ आत्मोत्सर्ग करना, शुक-सारिका का आत्मबलिदान, रणक्षेत्र में अष्टभुजा देवी का दर्शन, सती का कटार लिए हुए अलाउद्दीन की ओर दौड़ना आदि। इन प्रसंगों से काव्य में रोचकता और मार्मिकता लाने की कोशिश की गई है। मूल बात यह है कि *जौहर* में श्यामनारायण पाण्डेय का उद्देश्य इतिहास को लिपिबद्ध करना नहीं है। उन्होंने इतिहास के प्रेरणादायी अंश को प्रकाशित करके भारतीय जनता में देशभक्ति और सतीत्व की गौरव-गाथा के प्रति श्रद्धा पैदा करने का प्रयत्न किया है। उन्हें इस कार्य में पर्याप्त सफलता भी मिली है। *जौहर* के वीर रसात्मक छन्द पाठकों में वीर-भाव जगाने में समर्थ हैं। पद्मिनी की आत्माहुति करुणा-विह्वल करनेवाली और उदात्त जीवन-मूल्य का बोध करानेवाली है, वह किसी रानी के आत्मदाह का सरल इतिवृत्त मात्र नहीं है। उसके इस आत्मदाह में नारी जाति का पातिव्रत, मान-सम्मान और स्वाभिमान छिपा हुआ है तथा उसकी जौहर-कथा में क्षत्रिय जाति का गौरवशाली इतिहास अंकित है।

जौहर में श्यामनारायण पाण्डेय ने पद्मिनी को नया व्यक्तित्व प्रदान किया है। वह सतीत्व और पातिव्रत की दृढ़ पथिक तो है ही, राष्ट्र और कुल की मान-मर्यादा की प्रखर संरक्षिका भी हैं। पति के बन्दी बना लिये जाने पर अपने दरबारियों को उसने युद्ध हेतु जिस तरह उत्साहित किया है और स्वयं को भी जिस तरह युद्ध-हेतु प्रस्तुत किया है, वह उसके प्रचण्ड रोष और पौरुषपूर्ण व्यक्तित्व का परिचायक है। विचार-विमर्श कर रहे दरबारियों से उसने कहा—शत्रुदल तुम्हारे सीने पर गरज रहा है, बहनों का अपमान हो रहा है, देश का स्वाभिमान चूर्ण हो रहा है और तुम लोग शिथिलगात होकर और गहन उदासी के साथ केवल विचार-विमर्श कर रहे हो। यदि तुम लोग अपने को युद्ध हेतु असमर्थ पा रहे हो तो बताओ, मैं महाकाली बनकर शत्रुदल पर आक्रमण कर सकती हूँ—

इनकार करो यदि तुम तो
मैं बनूँ महाकाली-सी

उत्साह न हो तो बोलो
गरजूँ खप्परवाली-सी।

मैं शेषनाग की करवट
सी एक बार जग जाऊँ।
मैं आग बनूँ वैरी-वन
में दावा-सी लग जाऊँ।

आँधी से आज मिला दूँ
अपनी तूफ़ानी गति को
मैं मुक्त करूँ क्षणभर में
कारा से अपने पति को।

जौहर की पद्मिनी वीरता की प्रतिमूर्ति है। वह सोये हुए लोगों को जगानेवाली, उन्हें कर्त्तव्य-मार्ग पर चलने की प्रेरणा देनेवाली और हताश-उदास जनता में वीरता का जोश पैदा करनेवाली वह वीरांगना है, जिसके इंगित पर हज़ारों पुरुषों ने देश-रक्षा के लिए आत्म-बलिदान कर दिया और हज़ारों स्त्रियों ने सतीत्व के कठिन अग्नि-पथ पर चलते हुए प्रसन्न मन से जौहर की ज्वाला में अपने को समर्पित कर दिया। कुछ लोगों का कहना है कि यदि रानी पद्मिनी सोलह हज़ार स्त्रियों के साथ आत्मदाह करने की बजाय रण-क्षेत्र में संघर्ष करते हुए वीरगति को प्राप्त हुई होती, जो शायद चित्तौड़ का इतिहास कुछ दूसरा हुआ होता। 'यदि ऐसा होता तो वैसा होता', की बात सोचने के लिए इतिहास इज़ाज़त नहीं देता। वह तो घटित यथार्थ है। 'जो नहीं हुआ' उस पर कैसी बहस, किन्तु जो हुआ, वह भी इतिहास का एक स्वर्णिम अध्याय है। चित्तौड़ के सैनिकों ने यदि क़िले की रक्षा करते हुए आत्मोत्सर्ग का रास्ता चुना तो उनकी स्त्रियों ने पापियों, कुकर्मियों और विधर्मियों से अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जौहर-ज्वाला में आत्माहुति दे दी। इस तरह दोनों ने आत्म-बलिदान करके राष्ट्र और कुल के मान-सम्मान की रक्षा के कठिन-व्रत का निर्वाह किया और चित्तौड़ की धरती के चप्पे-चप्पे को नमन करने योग्य बना दिया। पद्मिनी की कथा सुनाकर संन्यासी ने पथिक से कहा—

राख को शिर से लगाकर
पाप-ताप शमन करो तुम।
देवियाँ इसमें छिपी हैं
बार-बार नमन करो तुम ॥

6
राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना

"जिसको अपनी संस्कृति से प्यार नहीं, स्वधर्म में श्रद्धा नहीं, अपनी जाति पर गर्व नहीं और राष्ट्र के प्रति निष्ठा नहीं, उसे देश का सरदर्द न कहा जाए तो और क्या कहा जाए?"[1] श्यामनारायण पाण्डेय का यह वक्तव्य उनकी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना को ही समझने में सहायक नहीं है, बल्कि यही उनकी समूची काव्य-साधना का मूलमन्त्र है। उनका समूचा काव्य वीररस प्रधान राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का काव्य है। यद्यपि श्यामनारायण पाण्डेय का रचनाकाल छायावादी युग से लेकर बीसवीं शताब्दी के नवें दशक (1989 ई.) तक फैला हुआ है और इस अवधि में देश की सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों में व्यापक परिवर्तन भी हुए हैं किन्तु श्यामनारायण पाण्डेय की उक्त काव्य चेतना में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। इस तथ्य के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि वे युगचेता कवि नहीं हैं। इसके विपरीत वास्तविकता यह है कि उन्होंने राष्ट्रीय आवश्यकताओं को ही ध्यान में रखकर बराबर काव्य-सृजन किया, यह दूसरी बात है कि वे साहित्य और समाज की बदलती हुई भावधारा के बीच अपनी पृथक् राह पर ही अडिग भाव से चलते रहे। उन्हें इसका एहसास भी रहा है—

मैं आर्य धर्म का वीरपुजारी, अलग अकेला हूँ।
चाहे कुछ कहो, मगर सबके मुँह मेला हूँ॥

यह भी एक सच्चाई है कि 'आर्य धर्म के इस वीर पुजारी' को भारतीय जनता ने बहुत मान-सम्मान दिया है। कवि-सम्मेलनों में उन्हें सुनने के लिए उमड़ी हुई जनता ने उनकी लोकप्रियता पर बराबर मुहर लगाई है और वीररस के इस अन्धड़ कवि को उसने जिस धैर्य एवं तन्मयता के साथ सुना है और जिस तरह उसकी वीररस की कविताओं को जोश-खरोश के साथ गाया और अपना कण्ठहार बनाया है, उससे श्यामनारायण पाण्डेय की जनप्रिय कवि की वह छवि उजागर हुई है, जिससे किसी भी यशःकांक्षी कवि को ईर्ष्या हो सकती है। इसका अभिप्राय यह है कि भले ही श्यामनारायण पाण्डेय ने बदलती हुई काव्य-प्रवृत्तियों के अनुसार अपनी भाव-धारा

1. *आधुनिक कवि*-17 : पृ. 8.

न बदली हो, किन्तु उनकी कविता में कुछ ऐसा ज़रूर था, जो जनता को सम्मोहित करता था और जिसको सुनने-जानने के लिए जनता उनके काव्य-पाठ की विकल प्रतीक्षा करती रहती थी। यह थी उनकी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना जो जनता को जगाने, सद्धर्म पर चलने, देश-हित के लिए बलिदान होने और कर्तव्य-निष्ठ होने का पाठ पढ़ाती थी।

जिस समय श्यामनारायण पाण्डेय की रचना-यात्रा शुरू हुई, उस समय देश में स्वाधीनता-संघर्ष ज़ोरों पर था। इस संघर्ष से ही उन्हें राष्ट्रीय काव्य के रचने की प्रेरणा प्राप्त हुई। अपने एक साक्षात्कार में उन्होंने बताया है—"वह जमाना था स्वतन्त्रता-संग्राम का। देश पराधीन था। आज़ादी की लहर चारों ओर थी, एक ही तराना मन को भाता था। वह था वीररस। छायावादी कविताओं का ज़ोर चल रहा था, पर उस समय देश युद्ध के मैदान में कूद चुका था। जब रणभेरी बज रही हो, जब कोयल की कूक और सरिताओं का निनाद या प्रेयसी की विरह-व्यथा कानों को अच्छी नहीं लगती। तलवारों की छप-छप और घोड़ों की टाप ही उस समय मन को खींचती है। मेरे साथ यही हुआ।"[1] स्वाधीनता-संघर्ष के दौरान उत्पन्न हुई कवि की यह राष्ट्रीय काव्यचेतना स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद भी स्थगित नहीं हुई, क्योंकि राष्ट्र की मुक्ति के बाद राष्ट्र-निर्माण का कार्य आवश्यक हो गया था। कहना चाहिए कि श्यामनारायण पाण्डेय की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यचेतना का फलक बड़ा है। उसका एक छोर राष्ट्र की मुक्ति से जुड़ा है तो दूसरा राष्ट्र के नवनिर्माण से। उनकी इस चेतना को उनकी स्वातन्त्र्य-पूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर काल की काव्य कृतियों में आसानी से देखा जा सकता है।

डॉ. सम्पूर्णानन्द के अनुसार, "जो साहित्यकार देश के जन-जीवन की उपेक्षा कर मौज का राग अलापता है, उसे साहित्यकार कहलाने का अधिकार नहीं है।" इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि "कोई साहित्यकार राष्ट्र के लिए उपयोगी साहित्य की सृष्टि कर रहा है, इस बात की अकेली पहचान यह है कि साहित्यकार सत्य तथा राष्ट्रीयता को अपनी श्रद्धा के अनुसार जिस रूप में ग्रहण करे, उसी रूप में निर्भय होकर व्यक्त करे, भागे नहीं। यदि वह ऐसा करता है तो बिना किसी वाद का प्रचारक हुए उसका साहित्य राष्ट्रीय कहलाने का अधिकारी होगा।"[2] श्यामनारायण पाण्डेय की साहित्य-साधना डॉ. सम्पूर्णानन्द की उक्त साहित्य-दृष्टि को पूर्णतः चरितार्थ करती है। उन्होंने वहीं लिखा, जो उन्हें अपने देश, धर्म, जाति एवं संस्कृति के उद्धार, कल्याण और उत्थान के लिए उचित प्रतीत हुआ। इसके लिए उन्होंने कभी अपने अकेले पड़ जाने की भी परवाह नहीं की। उन्होंने अपनी

---

1. *राष्ट्रीयता की अवधारणा और श्यामनारायण पाण्डेय* : पृ. 125
2. *हिन्दी गद्य रत्नावली* : डॉ. लक्ष्मीचन्द्र खुराना : पृ. 100

काव्य-साधना और अपनी प्रकृति के बारे में लिखा है—

> "मैं आर्य-संस्कृति का पुजारी तथा धर्म की आधारशिला पर भारतीय परम्परा की विकासोन्मुख सभ्यता का पक्षधर हूँ। मैं देश, जाति और सद्धर्म के अभ्युदय की पताका उड़ाता फिरता हूँ।" (*आधुनिक कवि*-17, अपनी बात, पृ.1) इसी के साथ यह भी स्वीकार किया है—"मैंने जो कुछ लिखा है, उसमें धर्म, संस्कृति, वीरत्व और राष्ट्रीयता का स्वर है, उसी का जय-जयकार है।" (वही, पृ. 12)

श्यामनारायण पाण्डेय के उपर्युक्त आत्मवक्तव्य और उनके साहित्य के अनुशीलन के बाद किसी को यह मानने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती कि वे राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के ओजस्वी कवि हैं। उन्होंने पराधीन देश की जनता में स्वातन्त्र्य भावना भरने, राष्ट्रीय चेतना जगाने और अपने धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिए बलिदान का उत्साह पैदा करने के लिए मध्यकालीन भारतीय इतिहास के वीरों और ओजस्वी व्यक्तित्व वाले पौराणिक चरित्रों के तप, त्याग, बलिदान और संघर्ष की अमरगाथाओं का इतना ओजस्वी वर्णन किया है कि सुनने-पढ़नेवालों की भुजाएँ फड़क उठें और उनकी नसों में गर्म लहू का तीव्र प्रवाह हो जाए। स्वाधीनता-संघर्ष के दौरान जब भारतीय नेतृत्व नरमदल और गरमदल में विभक्त हो गया था, उस समय श्यामनारायण पाण्डेय की चेतना को गरमदल से ही अधिक प्रेरणा मिली। एक ओर सत्य और अहिंसा के पुजारी महात्मा गाँधी थे, दूसरी ओर क्रान्तिकारी सुभाषचन्द्र बोस। नेतृत्व की इन दो विरोधी स्थितियों के पैदा होने से देश की स्थिति काफ़ी द्वन्द्वपूर्ण हो उठी थी। श्यामनारायण पाण्डेय की समझ में यह बात नहीं आती थी कि राष्ट्रहित में काल को भी चुनौती देनेवाले सुभाषचन्द्र बोस से महात्मा गाँधी क्यों चिढ़ते थे और मुस्लिम लीग के बन्द दरवाज़े के सामने हाथ जोड़कर क्यों खड़े रहते थे? इस परिस्थिति से देश की जनता में कई तरह के द्वन्द्व पैदा हुए। परस्पर विरोधी भावों के संघर्ष तथा तू-तू मैं-मैं की रगड़ से साम्प्रदायिकता की आग भड़क उठी। (*आधुनिक कवि*-17, पृ. 6) उस समय की स्थिति का वर्णन करते हुए श्यामनारायण पाण्डेय ने लिखा है—

> "गौतमबुद्ध और महावीर के पदचिह्नों पर चलनेवाले हिन्दू एक दूसरे को चकित आँखों से देख ही रहे थे, तब तक पाकिस्तान की नींव निहत्थों की निर्मम हत्या, बलात् धर्म-परिवर्तन, असहाय अबलाओं के साथ बलात्कार तथा जलते हुए नगरों और गाँवों की भयंकर लपटों के सहारे उठने लगी। गर्ग, गौतम, कणाद और कपिल की जन्म धरती रक्त से नहाने लगी, बड़े-बड़े लोकरक्षक तलवार के घाट उतार दिये गये, हिन्दू-मुस्लिम का नारा बुलन्द करनेवाले कोटरों में घुस गये। हिन्दुओं की सहनशक्ति जब क्षीण होने लगती,

आकाश में जब वज्रवर्णी लाल-लाल बादल मँडराने लगते, भयंकर तूफ़ान उठनेवाला होता तो गाँधी जी अनशन पर बैठ जाते, मरने की धमकी देने लगते। हिन्दुओं के कण्ठ में जय बजरंग बली का हुंकार गड़गड़ाकर रह जाता और उनका सारा जोश आँखों से बहने लगता। यह था धर्मभीरू हिन्दू जाति पर महात्मा शब्द का प्रभाव। यवन बर्बर और हिंसक गोरों के कराल जबड़ों के बीच पिसी जा रही थी हिन्दू जाति, उसकी विद्या और संस्कृति। अकेले आर्यदेवता महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी के लुढ़कते आँसू क्या करते। दोनों को दूध-पानी की तरह मिलाकर रखने की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। देश की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति कितनी दर्दनाक थी, कितनी शर्मनाक।" (*आधुनिक* कवि-17 पृ. 7)

इस परिस्थिति-विश्लेषण से यह जाना जा सकता है कि श्यामनारायण पाण्डेय महात्मा गाँधी के नेतृत्व से सन्तुष्ट न थे। उन पर पं. मदन मोहन मालवीय और सुभाषचन्द्र बोस का संयुक्त प्रभाव था। यही वजह थी कि उन्होंने हिन्दूधर्म और संस्कृति की सुरक्षा और उसके उत्थान को ही अपनी चिन्ता के केन्द्र में रखा और उसके लिए सुभाषचन्द्र बोस के क्रान्तिकारी मार्ग को ही अपना श्रेयस्कर समझा। ऐसी स्थिति में महाराणा प्रताप की याद आना स्वाभाविक था। उन्होंने लिखा है—"उस संघर्षकाल में मुझे महाराणा प्रताप के वर्चस्वी व्यक्तित्व की याद आने लगी, हिनहिनाते हुए परम प्रतापी घोड़े की टाप सुनायी पड़ने लगी और ताण्डव करते हुए उनके भयंकर भाले के तेज की भभक से आँखे चौंधियाने लगीं। समाधि से महाराणा को जगाने की लालसा तीव्र हो उठी।" (वही, पृ. 7)

स्पष्ट है कि श्यामनारायण पाण्डेय की *हल्दीघाटी* की रचना के मूल में भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष की वह पृष्ठभूमि है, जो अंग्रेज़ों के साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ भारतीय जनता के मुक्ति-संघर्ष के रूप में तैयार हुई थी। राणाप्रताप और अकबर के बीच का हल्दीघाटी-युद्ध भी साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ राणाप्रताप का मुक्ति-संघर्ष था। अकबर की नीति धार्मिक एवं राजनैतिक साम्राज्यवाद की नीति थी। महाराणा प्रताप ने उसकी धार्मिक नीति में धार्मिक साम्राज्यवाद को सुदृढ़ करने की कूटनीति दिखाई पड़ी थी। उन्होंने लक्ष्य किया था कि उसके दीन-इलाही धर्म के प्रचार से हिन्दू जनता का जातीय अभिमान समाप्त हो गया है, ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व भी समाप्त होने लगा है—

हिन्दू जनता ने अभिमान
छोड़ा रामायण का गान।
दीन इलाही पर क़ुर्बान
मुसलमान से अलग क़ुरान ॥

तनिक न ब्राह्मणकुल उत्थान
रही न क्षत्रियपन की आन।
गया वैश्य कुल का सम्मान
शूद्र जाति का नाम निशान ॥

कवि का कहना है कि राणा प्रताप का अकबर से विरोध इसलिए हुआ कि वह दीन-इलाही के माध्यम से हिन्दू धर्म एवं जाति को समाप्त कर देना चाहता था। राणा प्रताप ने उसकी इस कूटनीतिक चाल को तुरन्त भाप लिया था–

कूटनीति सुनकर अकबर की
राणा जो गिनगिना उठा।
रण करने के लिए शत्रु से
चेतक भी हिनहिना उठा ॥

दूसरी तरफ़ अकबर निरन्तर अपने साम्राज्य का विस्तार करता जा रहा था। सभी हिन्दू राजा एक-एक करके उसकी अधीनता स्वीकार करते जा रहे थे, उसके साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध क़ायम करके वे आत्मगौरवहीन होते जा रहे थे। राणा प्रताप ने उसकी अधीनता स्वीकार न करके उसकी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का विरोध किया। कवि ने लिखा है कि जो सम्पूर्ण हिन्दुस्तान का बादशाह था, जिसके पास बड़े-बड़े भव्य महल थे, अकूत धन-वैभव था और जिसके चरणों को तमाम राजे-महाराजे अपने अश्रु-जल से नित्य धोया करते थे, उसके हृदय में रह-रहकर यह अरमान जाग पड़ता था–

तो भी कहता था सुल्तान
पूरा कब होगा अरमान।
कब मेवाड़ मिलेगा आन
राणा का होगा अपमान ॥

उसकी बहुत बड़ी लालसा यह थी कि मानसिंह की ही तरह राणा प्रताप भी अपना मुकुट झुकाकर उसको सम्मान प्रदान करें–

एक बार भी मान-समान
मुकुट नवा करता सम्मान।
पूरा हो जाता अरमान।
मेरा रह जाता अभिमान ॥

राणा प्रताप ने अभिमान-जनित उसकी यह इच्छा पूरी न होने दी। उन्होंने अपने कुल के मान-सम्मान, और देश-धर्म के गौरव के लिए अकबर से युद्ध छेड़कर स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का जो बिगुल बजाया, वह स्वाधीनता-संघर्ष में रत

भारतीय जनता के लिए अत्यधिक प्रेरणादायी सिद्ध हुआ। इस रचना को प्रस्तुत करते समय कवि ने यह विश्वास व्यक्त किया था–

> "कठिन से कठिन परिस्थितियों से लड़ते हुए सत्य, शौर्य, त्याग और बलिदान के देवता महाराणा प्रताप का प्रचण्ड व्यक्तित्व सूर्य-चन्द्र की किरणों में तो चमकता ही है, मेरी *हल्दीघाटी* के छन्द-छन्द में भी गरजता है। मुझे पूरा विश्वास है कि *हल्दीघाटी* युग-युग तक भारतीयों को बहादुरी का पाठ पढ़ाती रहेगी, स्वाधीनता स्वाभिमानी वीरों के हुंकार में शक्ति भरती रहेगी और राष्ट्रीय संकट के समय देश के पौरुष को जगाती रहेगी, ललकारती रहेगी।"

कवि का यह विश्वास पूरा हुआ। *हल्दीघाटी* ने देश की जनता में मातृ-भूमि के लिए अगाध प्रेम जगाया और उसकी मुक्ति के लिए सर्वस्व बलिदान का पाठ भी पढ़ाया। राणा प्रताप के स्वर में ही स्वाधीनता के सेनानियों ने भी अपने स्वर मिलाये–

> जब तक स्वतन्त्र यह देश नहीं
> है कट सकता नख केश नहीं।
> मरने कटने का क्लेश नहीं
> कम हो सकता आवेश नहीं ॥

हल्दीघाटी ने स्वातन्त्र्य-समर-रत भारतीय जनता में स्वाधीनता का ऐसा तीव्र भाव पैदा कर दिया कि उसके लिए जान भी सस्ती पड़ गयी। स्वाधीनता के लिए तप, त्याग, बलिदान और अथक संघर्ष का पाठ पढ़ानेवाली इस ऐतिहासिक घटना के वर्णन से श्यामनारायण पाण्डेय ने अपने राष्ट्रीय दायित्व की पूर्ति की है।

हल्दीघाटी के नायक महाराणा प्रताप की ही तरह *जौहर* के गोरा-बादल और रतनसिंह, जौहर-ज्वाला में भस्मीभूत महारानी पद्मिनी तथा *शिवाजी* काव्य के राष्ट्रनायक वीर शिवाजी और मावली जनता ने भी देश के उद्धार के लिए तप, त्याग, संघर्ष और बलिदान का जो उदाहरण प्रस्तुत किया, वह इतिहास का तो स्वर्णिम अध्याय है ही, बीसवीं शताब्दी की जनता को अपने देश की पराधीनता की बेड़ी से मुक्त करानेवाला अजस्र स्रोत भी है। *जौहर* में अलाउद्दीन ख़िलजी के आक्रमण के समय चित्तौड़ के सैनिकों को राष्ट्र की रक्षा के लिए दिया गया उद्बोध-सन्देश प्रकारान्तर से अंग्रेज़ी शासन के ख़िलाफ़ संघर्षरत भारतीय जनता को ही दिया गया जागृति-सन्देश है–

> जगो तुम्हारी काशी में
> हत्यारों ने डेरा डाला।
> उठो तुम्हारे तीर्थराज पर
> निठुरों ने डेरा डाला ॥

जगो तुम्हारी जन्मभूमि को
रौंद लुटेरे लूट रहे।
उठो तुम्हारी मातृभूमि के
जीवन के स्वर टूट रहे ॥

जगो विरोधी घूम-घूम
घर-घर के दाने बीन रहे।
उठो तुम्हारे आगे ही
थाली बरजोरी छीन रहे ॥

कहाँ अलाउद्दीन का चित्तौड़ पर आक्रमण और कहाँ सारे भारत देश की जनता को जागरण का सन्देश। ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि यह अंग्रेज़ों के अत्याचारपूर्ण लूट-पाटवाले शासन का ही खुलासा है और जनता को इसी के विरुद्ध तैयार किया गया है। यह अतीत की कथा में वर्तमान की चेतना भरने का ऐसा उपक्रम है, जो इतिहास और वर्तमान को अविच्छिन्नता में चित्रित करके अतीत को स्पृहणीय और प्रासंगिक बना देता है। श्यामनारायण पाण्डेय इस कला में दक्ष हैं और यही उनकी काव्य-कला का उद्देश्य भी है। *शिवाजी* काव्य में उनकी इस कला का उत्कृष्ट निदर्शन हुआ है। भारत की धरती पर जिस दिन शिवाजी का जन्म हुआ उसी दिन चारों तरफ़ देश, धर्म, जाति और संस्कृति के उद्धार, उत्थान और निर्माण की चेतना भी जाग उठी—

भारत भाग्यविधाता जागा जागा हिन्दुस्तान।
गो-ब्राह्मण-कुल त्राता जागा जागा कुल अभिमान।
जागा देव भाषा का गौरव जागा जन-बलिदान।
जगी आर्य-संस्कृति भारत की महाराष्ट्र की आन ॥

शिवाजी ने औरंगज़ेब के विरुद्ध जो लड़ाई लड़ी, वह स्वाधीनता की लड़ाई थी। वह देश, धर्म, जाति, कुल और संस्कृति की मुक्ति और पुनर्स्थापना के लिए छेड़ी गई ऐसी लड़ाई थी, जिससे सैकड़ों वर्षों के बाद बीसवीं शताब्दी की जनता को भी पराधीनता से मुक्ति और स्वराज्य की स्थापना की प्रबल प्रेरणा मिली। गुरु रामदास ने तत्कालीन देश की दुर्दशा और शासन के अत्याचार से शिवाजी को अवगत कराने के बाद कहा कि तुम धर्ममय स्वराज्य की स्थापना के लिए संघर्ष करो, मैं तुम्हारे साथ हूँ। गुरु की इस प्रेरणा से शिवाजी ने 'स्वधर्म', 'स्वदेश' और 'स्वजाति' के लिए मुग़ल शासन के ख़िलाफ़ जंग छेड़ दी। उन्होंने मावली जनता को इस स्वाधीनता का पाठ पढ़ाते हुए कहा—

रहो मनुष्य की तरह
मनुष्य का स्वभाव हो

जिओ मनुष्य की तरह
मनुष्य से लगाव हो ॥

ज़मीन अन्न वस्त्र हो
स्वतन्त्र यज्ञ-दान हो।
प्रसन्न देश में प्रसन्न
साँझ हो, विहान हो ॥

गुलाम की न ज़िन्दगी
प्रकाश-छोर छू सकी।
दरिद्र की विपत्ति को
कहाँ सम्भाल तू सकी ॥

उन्होंने 'स्वतन्त्रता' को जीवन का चरम मूल्य बताते हुए अपनी यह अभिलाषा भी प्रकट की—

क़िला-किला स्वतन्त्र हो
स्वतन्त्र वर्ण वेश हो।
स्वतन्त्र जाति-जाति हो
स्वतन्त्र यह स्वदेश हो।

शिवाजी की तोरण-विजय पराधीनता की बेड़ी को काटनेवाली विजय है—

पराधीनता की कड़ी-कड़ी तोड़ने के लिए
प्रीति जोड़ने के लिए
धर्म रीति-नीति में
प्रतीति जोड़ने के लिए
तोरण किले की ओर
बाज शिवराज चले।

उन्होंने जिन शब्दों में अपने वीर सैनिकों को देश, धर्म जाति एवं संस्कृति की मुक्ति और प्रतिष्ठा के लिए उत्प्रेरित किया है, वहीं उत्प्रेरणा भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष के दौरान मुक्ति-कामी जनता को भी अपने नेताओं से मिल रही थी। शिवाजी ने सैनिकों के सामने यह भली-भाँति स्पष्ट कर दिया था कि यह युद्ध किसी प्रकार के स्वार्थ या सत्ता-लोभ के लिए नहीं है। यह बन्दी स्वदेश को मुक्त कराने के लिए छेड़ा गया धर्म-युद्ध है—

"रज-राज-ताज के लिए न युद्ध ठाना गया
युद्ध है
स्वधर्म हित

जाति हित
देश हित
आर्य वर्ण-वेश हित
बन्दी है स्वदेश उसे मुक्त करने के लिए।
चलो साथ दो
साहस दो
हाथ दो।"

शिवाजी काव्य की राष्ट्रीय भावना का अच्छा परिचय मिलता है शिवाजी के उस पत्र में, जिसे उन्होंने मिर्ज़ा राजा जयसिंह के नाम लिखा था। उस पत्र में शिवाजी ने अपने संघर्ष को व्यापक परिप्रेक्ष्य देते हुए लिखा था कि मेरे सामने कई बड़े कार्य हैं; जैसे—दलित जाति को संगठित करना, सिरफिरे हिन्दुओं की अक़्ल को ठिकाने लगाना और भारत भूमि को एकसूत्र में बाँधना। अपने जीवन के महत् उद्‌देश्यों को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा था—

कभी धर्म का ह्रास होने न दूँगा
सदाचार का नाश होने न दूँगा।
कभी चल सकेगी न फिरकापरस्ती
दखल धर्म में दे किसी की न हस्ती
प्रतिज्ञा नहीं यह हवा बोलती है
इसी के लिए ज़िन्दगी डोलती है।

इस तरह *शिवाजी* काव्य के माध्यम से श्यामनारायण पाण्डेय ने भारतीय जनता में राष्ट्रीयता का स्वर फूँका और उसे देश की पराधीनता की बेड़ी काटकर, आततायी शासन को समाप्त कर सदाचार और उच्च आदर्शोंवाले स्वराज्य की स्थापना के लिए तैयार किया। मुग़लों से अपने क़िलों को जीतने के बाद शिवाजी ने जो उत्तम शासन-व्यवस्था क़ायम की, एक तरह से देखा जाए तो वहीं स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद के देश की शासन-व्यवस्था का कवि का सपना है। शिवाजी के शासन में सुख-समृद्धि के साथ-साथ चारों तरफ सौहार्द, शान्ति, पारस्परिक प्रीति, सदाचार, धर्म-निष्ठा और स्वतन्त्रता एवं समानता का सुखद वातावरण छा गया। *शिवाजी* काव्य की रचना करने के बाद कवि ने यह आशा व्यक्त की थी—

> "मैं लिखते समय से ही आश्वस्त हूँ कि *शिवाजी* महाकाव्य सभी वर्गों का मार्ग-दर्शन करेगा; स्वदेश, स्वधर्म और अपनी संस्कृति के प्रति आस्था बढ़ेगी, भारतीय कहलाने में संकोच नहीं होगा और अपनी भाषा गौरवान्वित होगी। लोग सच्चरित्र, साहसी, नीति-निपुण, विवेकशील, संगठित और विजयोन्मुख होकर भारतीय राष्ट्र-जीवन की प्रतिष्ठा बढ़ाएँगे।"

कहना न होगा कि श्यामनारायण पाण्डेय का *शिवाजी* काव्य ही नहीं, उनका सम्पूर्ण साहित्य राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत और उच्च सांस्कृतिक आदर्शों से परिपूर्ण ऐसा साहित्य है, जिसको गम्भीरता से पढ़ लेने के बाद किसी भी भारतवासी को भारतीय कहलाने में न तो संकोच होगा, न ही देश, जाति, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए तन, मन, धन को न्यौछावर करने में क्लेश होगा। उन्होंने अपने ऐतिहासिक काव्यों में यदि अतीत के गौरवशाली चरित्रों और प्रेरणादायी घटनाओं का वर्णन करके पराधीन देश की जनता को स्वतन्त्रता, समानता और आत्मगौरव का पाठ पढ़ाया तो पौराणिक काव्यों के माध्यम से भी उक्त भावों की परिपुष्टि करते हुए सांस्कृतिक मूल्यों को पुनर्प्रतिष्ठित करने का भी उल्लेखनीय कार्य किया। *तुमुल, जय हनुमान, वशिष्ठ* और *परशुराम* जैसी कृतियों से उन्होंने पौराणिक आदर्शों को भारतीय जनता में प्रतिष्ठित करके उसके खोये हुए गौरव और स्वत्व को पुनः प्राप्त करने का मार्ग दिखाया। श्यामनारायण पाण्डेय के काव्य की ये प्रवृत्तियाँ पुनरुत्थानवादी चेतना की परिचायक ज़रूर हैं, किन्तु इस सन्दर्भ में दो बातों पर ध्यान देना ज़रूरी है। एक तो यह कि पुनरुत्थान की चेतना हमेशा और हर तरह से बुरी ही नहीं होती है। यदि पुराने मूल्यों को आत्मसात् कर कोई जनता विकास, सुख-समृद्धि और शान्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सकती है तो उसे उस पथ को निःसंकोच चुनना चाहिए। दूसरी बात यह है कि कोई भी कवि अपने समय की चेतना से अछूता नहीं रह सकता है।

जिस समय श्यामनारायण पाण्डेय ने सृजन-यात्रा आरम्भ की, उस समय हिन्दी में नैतिकतावादी, वर्णनात्मक, उपदेशात्मक एवं पुनरुत्थान की चेतना वाली कविताओं की प्रधानता थी। अतीत के स्वर्णिम पृष्ठों से वर्तमान को आलोक देने का कार्य भी साहित्यकारों द्वारा हो रहा था। यदि मैथिलीशरण गुप्त *भारत-भारती* लिखकर आर्यजनों को "हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी" पर विचार करने को उत्प्रेरित कर चुके थे तो जयशंकर प्रसाद भी गुप्तकाल के स्वर्णिम पृष्ठों को अपने नाटकों में चित्रित करके "हिमाद्रि तुंग-शृंग से/ प्रबुद्ध शुद्ध भारती / स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती" का पूत सन्देश भारतीय जनता में भर रहे थे। ऐसी परिस्थिति में श्यामनारायण पाण्डेय को भी वही रास्ता रास आया। उनकी दृष्टि में यह अपनी ही संस्कृति में बोलने-लिखने का ही काम था और ऐसा करके ही कोई कवि सही बोल सकता है और सही लिख सकता है—"जो जिस संस्कृति में पलता है, उसी में वह बोल सकता है, लिख सकता है अन्यथा उसके बोलने लिखने का कोई अर्थ नहीं है। यदि दूसरी संस्कृति में बोलने का दुःसाहस करेगा तो ग़लत बोलेगा।" (*आधुनिक कवि*-17, पृ. 9) अपनी इसी धारणा के तहत, जिसे ग़लत भी नहीं कहा जा सकता, उन्होंने राम, परशुराम, हनुमान, वशिष्ठ, महाराणा प्रताप और शिवाजी जैसे धर्मनिष्ठ, धीरोदात्त, आचारवान् और पराक्रमी अवतारी पुरुषों और

ऐतिहासिक चरित्रों को अपने काव्यों में चित्रित कर अपनी श्रेष्ठ संस्कृति और गौरवशाली इतिहास को भारतीय जनता के समक्ष अनुकरणीय आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया। आज भले ही सतीप्रथा के नाम पर *जौहर* की पद्मिनी के सतीत्व की आलोचना की जाए, किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि पद्मिनी का सतीत्व सतीप्रथा से भिन्न चीज़ है। पद्मिनी के सतीत्व की गौरव-गाथा को चित्रित करके श्यामानारायण पाण्डेय ने भारतीय स्त्रियों के सामने पातिव्रत का वह आदर्श प्रस्तुत किया है, जो उन्हें पथ-भ्रष्ट होने से बचा सकता है और सच्चरित्रता का जीवन जीने में मदद कर सकता है। श्यामनारायण पाण्डेय की पद्मिनी केवल पतिव्रता पत्नी नहीं है, वह अन्याय, अत्याचार और कुदृष्टि का विरोध करनेवाली प्रचण्ड रणचण्डी भी है। पद्मिनी के इस चरित्र को चित्रित करने के मूल में कवि की यह धारणा रही है कि भारतीय स्त्रियाँ इस आदर्श पर चलकर भारतीय परिवार को पवित्रता का उदाहरण बना सकती हैं—"मैंने कीर्ति की तरह पवित्र, सीता-सावित्री की तरह पतिव्रता और दुर्गा की तरह वीरांगना महारानी पद्मिनी के चरित्र को अक्षरों में बाँधने का प्रयत्न किया है, ताकि देश की भटकती हुई नारियाँ पद्मिनी को समझें, उनकी पवित्रता अपने जीवन में उतारें और उनके शौर्य-साहस को नस-नस में भर लें।"

श्यामनारायण पाण्डेय के सामने नारी के दोनों रूप रहे हैं—एक लक्ष्मी का, दूसरा काली का—"जब नारी लक्ष्मी बनती है तब अपने तेज से घर में नये स्वर्ग की रचना करती है और जब काली बनती है तब हिंस्र जन्तु की तरह जन-जन का रक्त चूसकर नग्न नृत्य करती है, निःशंक और निर्लज्ज।" जो लोग नारी-मुक्ति की बात करते हैं, वे भी नारी के काली-रूप को नहीं सराहेंगे, यह एक निर्विवाद सत्य है। शील-सदाचारशून्य कोई भी व्यक्ति किसी के लिए स्पृहणीय नहीं हो सकता है, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष। श्यामनारायण पाण्डेय ने स्त्री-पुरुष दोनों को तप, त्याग, शील, सदाचार और बलिदान का पाठ पढ़ाने के लिए इतिहास और पुराण के पात्रों के अनुकरणीय चरित्रों का वर्णन किया है ओर यह उम्मीद की है कि उन चरित्रों को पढ़कर भारत के स्त्री-पुरुष सन्मार्ग पर चलने के लिए अवश्य प्रतिबद्ध होंगे।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि श्यामनारायण पाण्डेय ने यदि *जौहर* में स्वधर्म, पातिव्रत और कुल-गौरव की रक्षा के लिए पद्मिनी के जौहर को गौरवान्वित किया है तो दूसरी ओर *परशुराम* काव्य में जमदग्नि की पत्नी रेणुका को पति-सेवा से विरत होकर कुष्ठरोगग्रस्त गन्धर्वराज और अन्य अपाहिज कोढ़ियों की सेवा में रत दिखाकर और परशुराम द्वारा उनके पक्ष का समर्थन करके स्त्री-धर्म को लोकमंगल की व्यापक भावना से जोड़ दिया है। अतः यह कहना समीचीन नहीं होगा कि श्यामनारायण पाण्डेय स्त्री की अन्ध पति-भक्ति के समर्थक हैं। उन्होंने भारतीय इतिहास और पुराणों के उच्च सांस्कृतिक आदर्शों को प्रस्तुत करके भारत में एक नया सांस्कृतिक वातावरण बनाने की कोशिश की है। उनके सामने एक ओर देश की स्वाधीनता

का प्रश्न था तो दूसरी ओर भारत की विशाल सांस्कृतिक परम्परा के श्रेष्ठ तत्वों के संरक्षण का गुरुतर कार्य भी था। वे यदि अंग्रेज़ों के अत्याचार और अन्यायपूर्ण शासन से भारतीय जनता को मुक्ति दिलाने के लिए चिन्तित थे तो दूसरी ओर नयी समाज-व्यवस्था में जनता में सद्‌गुणों के विकास के लिए भी विकल थे। अपने इन दोनों उद्‌देश्यों की पूर्ति के लिए उन्होंने राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से समन्वित वीरकाव्यों की रचना की।

श्यामनारायण पाण्डेय की राष्ट्रीय चेतना पर टिप्पणी करते हुए डॉ- शिवकुमार मिश्र ने लिखा है—"आपकी वाणी में ओज, ललकार अथवा पौरुष अवश्य है, पर भावनाएँ बहुधा ही साम्प्रदायिक परिधि में घिर जाने के कारण समस्त राष्ट्र को अभिव्यक्त नहीं कर सकी हैं, वे उस मार्ग का सम्यक् अनुसरण करने से पिछड़े गयी हैं, व्यापक आधारों को लिए हुए हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन जिस पर गतिशील हो रहा था। यदि यह कहें कि आपने हिन्दू राष्ट्रीयता को स्वर दिया है तो अत्युक्ति न होगी।" (*नया हिन्दी का काव्य,* शिवकुमार मिश्र, पृ. 64-65) यह निर्विवाद सत्य है कि श्यामनारायण पाण्डेय ने हिन्दू राष्ट्रीयता, आर्य-संस्कृति और आर्य-सभ्यता में अपनी आस्था व्यक्त की है और उसी के उदात्त मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा देने के लिए वीर काव्यों की रचना की है, किन्तु इतने से ही उनकी राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक चेतना त्याज्य, उपेक्षणीय और संकीर्ण नहीं हो जाती। तथ्यों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में और वस्तुनिष्ठ ढंग से देखने पर यह समझा जा सकता है कि श्यामनारायण पाण्डेय ने जिन ऐतिहासिक-पौराणिक चरित्रों को केन्द्र में रखकर राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना के प्रसार का कार्य किया है, उनमें उस हिन्दू-मुस्लिम एकता को रेखांकित करने की गुंजाइश नहीं थी, जो स्वाधीनता-आन्दोलन के दौरान देखने को मिलती है, हालाँकि उस एकता में भी गहरी फाँक रही है, जिसके परिणामस्वरूप पाकिस्तान बना और आज़ादी के इतने वर्षों के बाद आज भी धर्मनिरपेक्ष भारत में यदा-कदा साम्प्रदायिकता का विषैला ज्वार आ ही जाता है।

अधिकांश कवियों ने, जिनमें श्यामनारायण पाण्डेय भी हैं, हिन्दू राष्ट्रीयता और हिन्दू-संस्कृति का गान किया, क्योंकि वे अपने हिन्दू-इतिहास और परम्परा से ही श्रेष्ठ तत्त्वों का चयन कर रहे थे और वे तत्त्व एक समय में हिन्दू जनता द्वारा मुसलमान-शासकों से संघर्ष करते हुए ही तैयार हुए थे। इस सन्दर्भ में डॉ. शम्भुनाथ पाण्डेय का यह विचार समीचीन लगता है—"कवियों ने हिन्दूसंस्कृति का ही गान किया, मुस्लिम संस्कृति की ओर ध्यान क्यों नहीं दिया, कारण है कि हिन्दू जाति का पराभव मुसलमानी शासकों द्वारा हुआ था....मुसलमानी शासन को वह अपने राष्ट्रीय पराभव के लिए उत्तरदायी ठहराता है और मुसलमानी शासन की घोर निन्दा करता है।....आर्य समाज, स्वामी विवेकानन्द और राष्ट्रवादी नेतागण तथा लोकमान्य तिलक आदि की प्राचीन भारतीय संस्कृति, हिन्दू धर्म, वेद-ग्रन्थों पर अटूट श्रद्धा थी,

जिनसे अधिकांश कवि प्रभावित थे।...तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टिगत कर कवियों की अतीतकालीन हिन्दू सांस्कृतिक चेतना न्यायपूर्ण एवं संगत लगती है।" (*हिन्दी में निराशावाद* : शम्भुनाथ पाण्डेय, पृ.57)

डॉ. नगेन्द्र ने भी लिखा है—"प्राचीन गौरव के पुनरुत्थान की भावना में स्वभावतः आर्य-संस्कृति का ही जयकार है, परन्तु यह भावना कहीं भी संकीर्ण तथा साम्प्रदायिक नहीं होने पायी है।" (*आधुनिक काव्य की प्रवृत्तियाँ* : नगेन्द्र : पृ. 30) यह वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से उपलब्ध हुआ निष्कर्ष है। जो लोग 'सेकुलर' होने का अतिरिक्त उत्साह रखते हैं, उन्हें उपर्युक्त वास्तविकताएँ न तो दिखाई पड़ती हैं और न उनकी समझ में आ सकती हैं। उल्लेखनीय है कि श्यामनारायण पाण्डेय ने मुस्लिम जनता की नहीं, मुग़ल शासन की आलोचना की है और उसके अत्याचारी, अन्यायी स्वरूप का विरोध किया है। राणा प्रताप का विरोध अकबर की साम्राज्यवादी मनोवृत्ति से था, दूसरों को अपने अधीन करने की उसकी कुप्रवृत्ति से था। *हल्दीघाटी* में कहीं भी किसी मुसलमान की निन्दा नहीं की गई है। कवि ने दीन-इलाही धर्म की आलोचना इसलिए की है कि उससे हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-धर्म ख़तरे में दिखाई पड़ रहा था, किन्तु इस आलोचना को किसी प्रकार की कटुता की हद को छूने नहीं दिया गया है। इसी तरह *जौहर* में भी अलाउद्दीन की रूप-लिप्सा, कामुक वृत्ति और अत्याचार का विरोध किया गया है। यदि किसी को हिन्दू-मुस्लिम की एकता के नाम पर अलाउद्दीन की कामुकता स्पृहणीय लगे तो वह उसकी प्रशंसा कर सकता है, यह उसका व्यक्तिगत मामला है, किन्तु औचित्य का पक्षधर व्यक्ति उसकी आलोचना ही नहीं करेगा, यथाशक्ति विरोध भी करेगा भले ही उसके हिन्दूवादी या मुस्लिम विरोधी ही क्यों न बनना पड़े। यदि मुसलमान के कुकृत्य के विरोध से कोई मुस्लिम-विरोधी हो सकता है और त्यागी, तपी, बलिदानी एवं चरित्रवान हिन्दू का पक्ष लेने से कोई संकीर्ण हिन्दूवादी हो सकता है तो जो यह परिभाषा करता है, उसको ही यह सब मुबारक हो।

सच्चाई यह है कि मुग़ल शासकों के अन्याय एवं अत्याचारपूर्ण शासन के विरोध का वर्णन करते समय श्यामनारायण पाण्डेय का अभिप्रेत था अंग्रेज़ी शासन के अन्याय और अत्याचार का विरोध करना। अब यदि राणा प्रताप ने अकबर का विरोध करके हिन्दुओं के मान-सम्मान की रक्षा की, शिवाजी ने औरंगज़ेब के कुशासन का विरोध करके हिन्दू धर्म और संस्कृति को जीवनदान दिया तो इस इतिहास को कैसे उलटा जाए? आज हिन्दू नाम से भले ही घिन आती हो, किन्तु उस समय तो यह गौरवपूर्ण शब्द था, ठीक 'आर्य' शब्द की तरह, जो एक समय में भारत में रहनेवालों के लिए प्राण से भी प्यारा था। प्राचीन ग्रन्थों में राम को 'आर्य' कहकर बार-बार पुकारा गया है, तथाकथित सेक्युलरवादी यह चाहेंगे कि इस शब्द को मिटा दिया जाए, क्योंकि इससे संकीर्णता की गन्ध आ रही है। ऐसे ही लोग *जौहर* के

सतीत्व को हेय ठहराते हैं, किन्तु *पद्मावत* को धर्मनिरपेक्ष रचना मानकर उसके सती-प्रसंग को दृष्ट्योझल कर देते हैं।

मूल बात यह है कि आज के मानदण्ड के आधार पर पुराने मूल्यों, आदर्शों और चरित्रों को परखना अनुचित है। होना यह चाहिए कि आज को गतिशील करने के लिए अथवा आज की समस्या का समाधान पाने के लिए यदि प्राचीन से कुछ प्रेरणा मिल सकती है तो उसे ले लिया जाए और बाक़ी को छोड़ दिया जाए। ऐतिहासिक एवं पौराणिक काव्यों की रचना करनेवाले कवियों ने यही कार्य किया है और यही कार्य श्यामनारायण पाण्डेय ने भी किया है। वे इतिहास-बोध के कवि हैं, इतिहास-ग्रस्तता के नहीं। यह भी उल्लेखनीय है कि जिनका समृद्ध इतिहास होता है, वही इतिहास से प्रेरणा ले सकते हैं। इतिहास-विपन्न जनता की मूल्यचेतना न तो व्यापक होती है, न दीर्घजीवी। परजीवी संस्कृति के लोग स्वाधीन चेतना के गौरव से भी शून्य होते हैं।

आर्य-संस्कृति, आर्य-धर्म, हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृति की बात करनेवाले श्यामनारायण पाण्डेय की काव्यचेतना की व्यापकता को देखने के लिए उनके *शिवाजी* काव्य का गहन अनुशीलन करना चाहिए। शिवाजी में हिन्दू-धर्म और संस्कृति को बचाने की प्रबल भावना के बावजूद हिन्दू-मुस्लिम के बीच फ़र्क़ करने की संकीर्ण मनोवृत्ति नहीं थी। उन्होंने बचपन में ही बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह को अपने व्यापक दृष्टिकोण से अवगत कराते हुए कहा था—

हे शहंशाह, रिआया हैं
दोनों ही हिन्दू मुसलमान
दोनों की शान बराबर है
हक़दार मुहब्बत के, समान।

जैसी मस्जिद वैसा मन्दिर
जैसा कुरान वैरा पुरान
है फ़रक़ नहीं कुछ भी हुजूर
है सम दोनों की आन-बान।

यदि नज़र एक पर होगी
तकलीफ़ दूसरे को होगी
यह बात किसी से छिपी नहीं
चाहे गँवार या हो योगी

हिन्दू-मुसलमान में समान दृष्टि रखते हुए भी शिवाजी ने आदिलशाह के शासन में हिन्दुओं पर होनेवाले अत्याचारों और गोहत्याओं का तार्किक ढंग से विरोध किया। उन्होंने शाह से कहा—

हिन्दू गोपालन करते हैं
गोवध करते हैं मुसलमान
इन्साफ कहाँ तक है फिर भी
हिन्दू न खोलते हैं ज़बान।

हिन्दू गाय का पालन करे, मुसलमान उसकी हत्या करे, इससे न तो साम्प्रदायिक सौहार्द बन सकता है और न ही इस परिस्थिति को बनाये रखनेवाले शासन को न्याय का शासन ही कहा जा सकता है। शिवाजी ने शाह से यह भी कह दिया कि—

जिसमें होती हिंसा हत्या
जो देश प्रजा-दुखदायक है
जिसमें स्वतन्त्रता की न साँस
वह देश न रहने लायक़ है।

आदिलशाह सच्चाई को माननेवाला था। शिवाजी की बातों को सुनकर उसने तुरन्त कहा—

यह लड़का जो कुछ कहता है
वह बहुत ठीक है वाजिब है
बेख़ौफ मुल्क भर में गोबध
अब करना बन्द मुनासिब है।

उसने गो-बध बन्द करवा दिया। कट्टर मुसलमान भड़क उठे, कुछ अण्ड-बण्ड भी कहा, किन्तु कुछ दिनों के बाद शान्त हो गये। इस घटना से शाह और शिवाजी के स्वभाव की यह विशेषता समझ में आ जाती है कि वे दोनों उचित बात के समर्थक और क़ायल हैं। दूसरी तरफ़ शाह के फ़रमान को सुनकर अनेक मुसलमानों ने कहा—"सुल्तान क़तल के लायक़ है, सोते में उसे क़तल कर दो।" कहने का अर्थ है कि श्यामनाराण पाण्डेय ने शिवाजी के चरित्र को साम्प्रदायिकता के रंग में नहीं रंगा है, बल्कि उन्हें साम्प्रदायिक सौहार्द के नायक के रूप में चित्रित किया है। वे हिन्दू राजा हैं, किन्तु किसी मुसलमान को क्षति पहुँचाना या किसी मुसलमान स्त्री की अस्मत के साथ किसी प्रकार की छेड़-छाड़ करना उन्हें स्वीकार नहीं है। जब उनके सैनिकों ने गौहरबानो को पकड़कर शिवाजी के सामने यह कहते हुए प्रस्तुत किया—

यह अहमद की पुत्रवधू
श्री पद-सेवा करने आयी
प्रभो इसे स्वीकार करें
यह क्षुधा तृषा हरने आई ॥

तब शिवाजी ने उसके साथ अलाउद्दीन खिलजी या मीना-बाजार लगवानेवाले बादशाह अकबर की तरह व्यवहार नहीं किया वल्कि उसमें अपनी माँ की छवि देखी और उसे 'शशि सी सुहासिनी और पावन' कहकर दिव्य पालकी में बैठाकर बेटी की तरह उसके घर पहुँचा देने का आदेश दे दिया। यह कृत्य हिन्दुत्व के प्रहरी शिवाजी का है, जबकि उनका हिन्दुत्व मुग़ल बादशाह औरंगज़ेब के कारण ख़तरे में पड़ा हुआ था और वे उसके विरुद्ध संघर्ष छेड़े हुए थे। यह भी उल्लेखनीय है कि मन्दिर के पुजारी और पक्षधर होते हुए भी शिवाजी ने अपने विजय-अभियान के दौरान कभी किसी मस्जिद को क्षति भी नहीं पहुँचाई। कल्याण-दुर्ग को जीतने के बाद सोनदेव सफ़ाई देते हुए कहता है–

जैसी आज्ञा थी, मस्जिद की
एक ईंट भी छुई नहीं
स्त्री-कुरान की यवन धर्म की
कहीं अवज्ञा हुई नहीं।

शिवाजी की सदाचार-निष्ठा और उच्चाशयी व्यक्तित्व के कारण हिन्दुओं और मुसलमानों ने प्रशंसा की थी। गौहरबानो के प्रकरण ने तो मुसलमानों के दिल में शिवाजी के लिए अपार आदर-भाव संचित कर दिया। दूसरी तरफ़ आततायी औरंगज़ेब की पुत्री ने भी शिवाजी की मदद करके यह सिद्ध किया कि मुसलमानों में भी उचित-अनुचित का विवेक रखनेवाले भी हैं। यही कवि-दृष्टि की निर्मलता और उन्मुक्तता है। औरंगज़ेब की पुत्री जेबुन्निसा अपने पिता के बारे में कहती है–

वालिद नहीं सिरदर्द है
बेशर्म है, बेदर्द है
उसका यही सब काम है
जिसका बुरा अंजाम है।

वह मजहबी मशहूर है
इन्सानियत से दूर है
उसमें मुसलमानी नहीं
कुछ भी क़दरदानी नहीं

उस तख़्त के वास्ते
वह रोककर सब रास्ते
सब भाइयों को खा गया
खाकर जनाब पचा गया

दादा तड़पते जेल में
अम्मा न रहती मेल में

उसको यक़ीन न आपका
अपने पिसर का बाप का।

ऐसे औरंगज़ेब का विरोध क्या हिन्दू द्वारा मुसलमान का विरोध है या लोकहित चिन्तक द्वारा अत्याचारी का विरोध है? मिर्ज़ा राजा जयसिंह को लिखे गये पत्र में शिवाजी ने औरंगज़ेब के अत्याचारी शासन का खुलासा किया है—

गऊ मार के मूर्ति पर रक्त छोड़े
बहू बेटियों से ग़लत प्रेम जोड़े
कहाँ तक उचित है, कहाँ तक सही है
नदी हिन्दुओं के रुधिर की बही है।

शिवाजी ने औरंगज़ेब की फ़िरकापरस्ती वाली नीति का विरोध किया और हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दृष्टि से देखने की आवश्यकता पर बल दिया। बाद में क़िलों को जीतने के बाद उन्होंने जब अपनी शासन-व्यवस्था कायम की तब हिन्दू-मुसलमान के भेद को मिटाया और जन-जन में स्वतन्त्रता-समानता का भाव प्रसारित किया जिसका गुणगान करते हुए अब्दुलगनी और शौक़त अली नाम के दो मुसलमानों ने यहाँ तक कह दिया—

सचमुच सरग उतरा वहीं
अब दिल न लगता है कहीं।

एक हिन्दू राजा ने यदि अपने राज्य में स्वर्ग को उतार दिया तो उसका यशगान करनेवाला व्यक्ति क्या संकीर्ण हिन्दूवादी कवि हो जाएगा? इस पर विचार करना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह है कि श्यामनारायण पाण्डेय ने तथा उस प्रकार की काव्यरचना करनेवाले अन्य कवियों ने भी ऐतिहासिक यथार्थ से वर्तमान के लिए सन्देश ग्रहण करते समय संकीर्णता का नहीं, यथार्थ-दृष्टि का परिचय दिया है। उनसे आज के सन्दर्भ में विकसित मूल्य-दृष्टि की माँग करना एक तो ऐतिहासिक परिस्थिति को नकारना है, दूसरे उनके साथ अन्याय करना भी है। आज विश्व-चेतना जिस ऊँचाई तक पहुँच चुकी है, बीसवीं शताब्दी के आरम्भ के कवि की चेतना के लिए वहाँ तक पहुँचना सम्भव न था। आज इतिहास के पुनर्लेखन की प्रक्रिया से गुज़रते हुए इतिहासकारों को जो नये तथ्य आलोकित हो रहे हैं, उनको ध्यान में रखकर आगे के कवि ऐसे काव्यों की रचना करने में समर्थ हो सकते हैं, जिनमें हिन्दू-मुसलमान की बातें उस तरह की नहीं होगी, जैसी कि पुनरुत्थानवादी या नवजागरण काल के कवियों के काव्य में हैं। हमें उस समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए और अपनी परम्परा तथा संस्कृति से प्रेरणा लेनेवाले कवियों के साथ समुचित न्याय करना चाहिए।

7

वैशिष्ट्य

"कौन ऐसा कपूत होगा, जिसका सीना अपने गत गौरव पर क्षणभर के लिए उन्नत नहीं हो जाएगा? हाँ, यह बात उनके लिए लागू नहीं हो सकती, जिनके रक्त-वीर्य में ही सन्देह है।"[1] श्यामनारायण पाण्डेय की यह धारणा ही उनके समूचे काव्य-सृजन की मूल प्रेरणा है। उन्होंने अपनी रचनाओं में भारत के अतीत का गुणगान करके उस समय की जनता को एक ओर उसके गौरवशाली अतीत से परिचित कराया, दूसरी ओर उसे अपने राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्ष के लिए यथेष्ट जोश पैदा किया। जिस समय उन्होंने *हल्दीघाटी* काव्य की रचना की, उस समय हिन्दी में छायावादी कविता मुख्य धारा के रूप में प्रवहमान थी। चूँकि श्यामनारायण पाण्डेय की प्रकृति वीर भाव-प्रधान थी, इसलिए उन्हें वह प्रीतिकार नहीं लगी। प्रणय-गीत लिखनेवाले छायावादी कवियों के बीच उन्होंने वीरभावना की कविता का निर्भीक पथ चुना। इस सन्दर्भ में उन्होंने लिखा है–

> "अनेक वादों के इस संघर्ष-युग में भी शृंगार की सामग्रियों की प्रचुरता से देवी (सरस्वती) ऊब रही थीं। मुझे कवियों की शृंगार-प्रियता असह्य हो गयी। मैं प्रताप के साथ चल पड़ा, काई की तरह फटकर वादों ने मार्ग दे दिया। मैं देवी के निकट था। माँ ने पूछा–तेरे हाथों में क्या है? मैंने कहा तलवार। माँ आश्चर्य से बोल उठीं–ऐं! तलवार? मैंने कहा–हाँ देवि, तलवार! राणा प्रताप की। इस परतन्त्र और भिखमंगों के देश में तेरे शृंगार से मुझे घृणा थी और दुख था, इसलिए तेरे शृंगार के लिए रक्त से रंगी हुई यह चुनरी, शोणित की गंगा में स्नान की हुई यह तलवार और वायुगति यह चेतक लाया हूँ। स्वीकार है? माँ की आँखों से स्नेह उमड़ रहा था, मुस्कराकर कहा– हाँ! वीर कविता मुँह-मुँह बोल उठी।"[2]

यहाँ इस बात पर विस्तृत बहस करने की आवश्यकता नहीं है कि प्रस्तुत वक्तव्य में उस समय की छायावादी कविता को शृंगार-प्रधान कहकर जो आलोचना

1. *हल्दीघाटी*–पुनरावृत्ति के लिए : पृ. 24.
2. वही, पृ. 24.

की गयी है, वह समीचीन है या नहीं, किन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि प्रेम, सौन्दर्य और विरह के गीत लिखनेवाले छायावादी कवियों ने भी अपनी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से तत्कालीन स्वाधीनता-संघर्ष को गति एवं दिशा दी है, इतना अवश्य है कि उनकी शैली श्यामनारायण पाण्डेय से भिन्न है। वह वर्णनात्मक और अभिधा-प्रधान न होकर लाक्षणिक और आन्तरिक है। बहरहाल, प्रस्तुत सन्दर्भ में इतना अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि छायावादी कविता की रूमानी प्रवृत्ति के बीच श्यामनारायण पाण्डेय ने वीर रस प्रधान राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता की रचना की और उन्हीं के शब्दों में उन्होंने 'जनानी कविता' की जगह 'मर्दानी कविता' लिखकर देश के स्त्री-पुरुषों में वीरभाव का संचार किया। यह उनकी कविता की ऐसी विशेषता है, जो उन्हें छायावादी दौर की काव्य-धारा में ही नहीं, बीसवीं शताब्दी के नवें दशक तक की हिन्दी कविता के बीच अलग से रेखांकित करती है। उन्होंने लगभग 60 वर्षों तक काव्य-सृजन किया, किन्तु वे राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना-समन्वित अपनी इस वीर-भूमि से ज़रा-सा भी इधर-उधर नहीं हुए।

श्यामनारायण पाण्डेय ने भारतीय जनता में देशोद्धार हेतु तप, त्याग, बलिदान और साहस का अदम्य भाव पैदा करने के लिए भारतीय इतिहास एवं पुराण के वीरों, योद्धाओं और बलिदानियों के शौर्यपूर्ण एवं उदात्त इतिवृत्त का चित्रण किया और देश की जनता को उनसे प्रेरणा लेने का सन्देश दिया—

> 'स्वतन्त्रता के लिए मरो' राणा ने पाठ पढ़ाया था।
> इसी वेदिका पर वीरों ने अपना शीश चढ़ाया था ॥
> तुम भी तो उनके वंशज हो, काम करो, कुछ नाम करो।
> स्वतन्त्रता की बलिवेदी है, झुककर इसे प्रणाम करो ॥
>
> —*हल्दीघाटी*, पृ. 19

हल्दीघाटी की भूमिका में उन्होंने लिखा है—"मैंने तो उनके (राणा प्रताप) कर्त्तव्यों के कुछ चित्र जनता के सामने रख दिये हैं, इसलिए नहीं कि पुस्तक पढ़कर लोग ऊँघने लगें, बल्कि इसलिए कि ऊँघते हुओं की आँखें खुल जाएँ।" कहना न होगा कि श्यामनारायण पाण्डेय की कविता मुर्दों में भी जान डालनेवाली और कायरों को भी देश-भक्ति का पाठ पढ़ाकर वैरी-दल पर राणा प्रताप या गोरा-बादल की तरह टूट पड़ने का जोश पैदा करनेवाली है। वह बड़ी ही जोशीली कविता है। उन्होंने *हल्दीघाटी, जौहर* और *शिवाजी* जैसे ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्यों में ही नहीं, *जय हनुमान, परशुराम* और *वशिष्ठ* जैसे पौराणिक खण्डकाव्यों में भी वीरभावना का ही वर्णन करके अपने को वीर कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि श्यामनरायण पाण्डेय की वीरभावना राष्ट्रीयता के उदात्त स्वर को आत्मसात् किये हुए है—उसका उद्देश्य है राष्ट्रोद्धार और राष्ट्र-निर्माण। उन्होंने अपने वीररसात्मक काव्यों से राष्ट्रीय संस्कृति की सुरक्षा और उसके उन्नयन का श्लाघनीय

कार्य किया है। जीवन-भर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना-प्रधान वीररसात्मक काव्य की रचना करके उन्होंने अपनी एक अलग छवि बनाई है। यह उनकी साहित्य-साधना की एक ऐसी विशेषता है, जिसकी दूसरी मिसाल आसानी से नहीं मिल सकती।

श्यामनारायण पाण्डेय का समूचा काव्य वर्णनात्मक है। यद्यपि उन्होंने जगह-जगह सूक्ष्म भाव-व्यंजना और अनुभूति-प्रधान चित्रण का भी कौशल दिखाया है, किन्तु उनकी वृत्ति वर्णनात्मक प्रसंगों में विशेष रूप से रमी है। युद्ध-दृश्यों और युद्ध हेतु प्रयाण के दृश्यों के वर्णन में उनका मन ख़ूब रमता है। चूँकि वीरभाव की जोशीली अभिव्यक्ति करना ही उनका अभीष्ट है, इसलिए उन्होंने अधिकांशतः इन्हीं सन्दर्भों पर अपना ध्यान भी केन्द्रित किया है। *हल्दीघाटी* में राणा-प्रताप और मानसिंह के युद्ध के वर्णन में कवि ने राणाप्रताप के घोड़े चेतक और उनके भाले के युद्धोत्साह का वर्णन करके जिस प्रकार वीर-रस का संचार किया है, वह अद्‌भुत है। इस युद्ध का एक दृश्य देखिए—

निर्बल बकरों से बाघ लड़े
भिड़ गये सिंह मृगछौनों से।
घोड़े गिर पड़े गिरे हाथी
पैदल बिछ गये बिछौनों से।

हाथी से हाथी जूझ पड़े
भिड़ गये सवार सवारों से
घोड़ों पर घोड़े टूट पड़े
तलवार लड़ी तलवारों से ॥

हय-रूण्ड गिरे, गज-मुण्ड गिरे
कट-कट अवनी पर शुण्ड गिरे
लड़ते-लड़ते अरि झुण्ड गिरे
भू पर हय विकल बितुण्ड गिरे ॥

राणा प्रताप, उनके घोड़े और भाले की युद्धोन्मत्तता का यह दृश्य तो और भी सजीव है—

कहता था लड़ता मान कहाँ
मैं कर लूँ रक्त-स्नान कहाँ?
जिस पर तय विजय हमारी है
वह मुग़लों का अभिमान कहाँ?

भाला कहता था मान कहाँ?
घोड़ा कहता था मान कहाँ?

राणा की लोहित आँखों से
रव निकल रहा था मान कहाँ?

उस समय राणा प्रताप का भाला बोल रहा था—

मुरदों का ढेर लगा दूँ मैं
अरि-सिंहासन थहरा दूँ मैं
राणा मुझको आज्ञा दे दे
शोणित सागर लहरा दूँ मैं ॥

जौहर में गोरा के युद्ध-वर्णन में कवि ने कल्पनाशीलता और सादृश्य-विधान का अच्छा परिचय दिया है—

गौरेयों में बाज़ पड़ा था
विहगों में खगराज पड़ा था।
मानों घनतम के घेरों में
प्राची का दिनराज पड़ा था।

झुण्ड काट कर तुण्ड उड़ाया
पूँछ काटकर मुण्ड उड़ाया।
अपनी खर-तर तलवारों से
छपछप विकल वितुण्ड उड़ाया ॥

मर-मर समर-मतंग गिरे
नभ के बादल गिरे धरा पर।
या हिल-हिल भूचाल-वेग से
काले पर्वत गिरे धरा पर ॥

वीररस के अतिरिक्त कवि ने रौद्र और वीभत्स रस के वर्णन में विशेष रुचि ली है। युद्ध आरम्भ करने से पहले वीरों की दर्पोक्तियों और ललकारों के माध्यम से रौद्ररस की स्वाभाविक अभिव्यक्ति की गई है। आगरा दरबार में शिवाजी ने अपना जो रौद्र रूप दिखाया, उससे तो बहुतों के प्राण कंठगत हो गये—

क्रुद्ध शिवराज ने कड़कते हुए कहा
सारे दरबार को झिड़कते हुए कहा

आए कोई सामने जगह से हटाए तो
ख़ून चूस लूँगा तिल भर उझकाए तो।

इसीलिए मुझको बुलाया गया पूने से?
मौत घोंट जाएगी अही के फन छूने से।

बेशऊर पागल गँवार मदहोश हूँ
होश में ज़बान खींच लूँगा वह जोश हूँ ॥

—*शिवाजी*, पृ. 196-197.

युद्ध के बाद के दृश्यों के चित्रण में भी कवि ने रूचि ली है। ऐसे वर्णनों से उसने वीभत्स रस की सृष्टि करके पाठक में जुगुप्सा भाव पैदा करने में भी सफलता प्राप्त की है। *हल्दीघाटी* में युद्ध के बाद मरे हुए लोगों को चील-कौए, सियार और गिद्ध किस प्रकार नोच-खा रहे हैं, यह वीभत्सपूर्ण दृश्य निम्नलिखित पंक्तियों में साकार हो गया है—

आँखें निकाल कर उड़ जाते
क्षणभर उड़कर आ जाते।
शव-जीभ खींचकर कौए
चुभला-चुभला कर खाते ॥

भोजन में श्वान लगे थे
मुरदे थे भू पर लेटे।
खा मांस चाट लेते थे
चटनी सम बहते नेटे ॥

आँखों के निकले कीचर
खेखार-लार, मुरदों की।
सामोद, चाट करते थे
दुर्दशा मतंग-रदों की ॥

—*हल्दीघाटी*, पृ. 157-159.

उनका *जौहर* काव्य वीर-करुण रस सिंचित है। इसमें वीरता के साथ-साथ करुणा का भी उस समय तीव्र प्रवाह हुआ है, जब चित्तौड़ की स्त्रियाँ और कुमारियाँ जौहर-ज्वाला में कूद-कूदकर आत्मदाह करने लगीं—

हा, सती के बाद ज्वाला
में धधकती नारियाँ थीं
खेलती चिनगारियों से
सुमन-सी सुकुमारियाँ थीं।

प्रकृति-वर्णन में भी कवि का मन ख़ूब रमा है। यद्यपि स्वतन्त्र रूप से प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन के लिए उसे कम अवकाश मिला है, किन्तु जहाँ भी उसे यह सुविधा मिली है, उसने प्राकृतिक दृश्यों का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हुए कवि ने जो शब्द-विधान किया है, वह बड़ा ही मनोरम है—

नीरव थी रात धरा पर विधु सुधा उँड़ेल रहा था।
नभ के आँगन में हँस-हँस, तारों से खेल रहा था ॥
शशि की मुसकान प्रभा से गिरि पर उजियाली छायी।
कण चमक रहे हीरों से, रजनी थी दूध नहायी ॥
वह उतर गगन से आया, सरिता-सरिता सर-सर में।
चाँदी-सी चमकीं लहरें, वह झूला लहर-लहर में ॥

—*जौहर*, पृ. 67.

प्रसंग के अनुरूप वातावरण की सृष्टि के लिए अथवा अगली घटना को रेखांकित करने के लिए कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का विशेष रूप से उपयोग किया है। *हल्दीघाटी* और *जौहर* में इस कला को विशेष रूप से अपनाया गया है। *जौहर* में *युद्ध* चिनगारी का आरम्भ रात की काली छाया की समाप्ति के बाद दिनकर के निकलने के वर्णन से हुआ है। प्रकारान्तर से इससे चित्तौड़ के वीर सेनानियों के बल-प्रताप और शौर्य की सूचना दे दी गयी है—

दिनकर-से चमचम बिखरे
भैरवतम हास कटारों के।
चमके कुन्तल-भाले-बरछे
दमके पानी तलवारों के।

हल्दीघाटी-युद्ध में पराजित होने के बाद जब राणा प्रताप निर्जन वन में जीवन व्यतीत कर रहे थे, तब उन्हें प्राकृतिक दृश्यों में अपने जीवन और संघर्ष की नाना छवियाँ दिखायी पड़ रही थीं। उन्हें ओस की बूँदें कभी पराधीन जननी के आँसू की लड़ियाँ प्रतीत होती थीं और कभी लगता था कि ये आसमान के तारे हैं, जो यहाँ स्वच्छन्द विचरण करने के लिए आए हुए हैं—

इन दूबों के टुनगों पर
किसने मोती बिखराये?
या तारे नील-गगन से
स्वच्छन्द विचरने आए ॥

या बँधी हुई हैं अरि की
जिसके कर में हथकड़ियाँ?
उस पराधीन जननी की
बिखरी आँसू की लड़ियाँ?

—*हल्दीघाटी*, पृ. 165.

आकाश के तारे उन्हें 'जननी-रक्षा-हित' उत्सर्ग हुए वीर योद्धा प्रतीत होते हैं—

जननी रक्षा हित जितने
मेरे रणधीर मरे हैं।
वे ही विस्तृत अम्बर पर
तारों के मिस बिखरे हैं ॥

—वही, पृ. 165.

श्यामनारायण पाण्डेय ने संध्या, प्रातः, मध्याह्न और रात के साथ-साथ नदी, वन, पर्वत आदि के दृश्यों का वर्णन करके प्राकृतिक सुषमा के प्रति जहाँ अपनी स्वाभाविक प्रीति दिखाई है, वहीं उसका उदद्दीपनात्मक वर्णन करके वर्ण्य भावदशा को और मार्मिक बनाया है। अधिकांश स्थलों में उनका यह प्रकृति-वर्णन पृष्ठभूमि का कार्य करता है, जिससे घटना-प्रसंग में रोचकता और सजीवता आ गई है।

श्यामनारायण पाण्डेय मुख्यतः प्रबन्धकार हैं। *आरती* को छोड़कर उनकी सभी कृतियाँ प्रबन्धात्मक हैं। *हल्दीघाटी, जौहर, शिवाजी* और *परशुराम* जैसी रचनाओं को महाकाव्य कहा गया है और *तुमुल, जय हनुमान, गोरावध, बालि वध* और *वशिष्ठ* को खण्डकाव्य। यदि सर्गविधान, वस्तु निर्देशात्मक मंगलाचरण, प्रकृति-वर्णन, धीरोदात्त नायक और लोकख्यात ऐतिहासिक-पौराणिक इतिवृत्त की दृष्टि से देखें तो उपर्युक्त कृतियाँ अवश्य महाकाव्य हैं, किन्तु कथा की सुसम्बद्धता, विशद्ता और मानव-जीवन के व्यापक चित्रण की दृष्टि से वे कुछ कमज़ोर मालूम पड़ती हैं। उनकी *हल्दीघाटी, जौहर* और *परशुराम* रचनाएँ अपने उदद्देश्य की महानता और धीरोदात्त नायकत्व के कारण महाकाव्यात्मक गरिमा से युक्त तो हैं, किन्तु उनमें व्यापकता का अभाव है। उनमें न तो जीवन की नाना स्थितियाँ हैं और न ही मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व और न ही पात्रों के चरित्र की बहुरंगी झाँकी। उनमें देशभक्ति और राष्ट्रोद्वार की हुँकृति तो है, किन्तु देश का सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो सका है। कहना चाहिए कि उनको रेखांकित करने की जीवन स्थितियाँ और घटनाएँ या तो अत्यल्प हैं या कथित हैं। उन्हें प्रबन्धकथा के ताने-बाने में नहीं बुना गया है। कवि का ध्यान वीर रसात्मक प्रसंगों पर ही अधिक केन्द्रित रहा है और उसने अपने चरित नायकों के त्याग, बलिदान और पराक्रम को ही उद्‌घाटित करने में विशेष रुचि ली है। जहाँ तक खण्डकाव्यों का प्रश्न है, वे खण्डकाव्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं। उनमें एक घटना-प्रसंग को अपेक्षित प्रवाह एवं क्रमबद्धता के साथ प्रस्तुत किया गया है और प्रमुख चरित्र एवं उद्‌देश्य को अच्छी तरह चित्रित किया गया है। *तुमुल, जय हनुमान, वशिष्ठ* और *बालि वध* उनके सफल खण्डकाव्य हैं।

श्यामनारायण पाण्डेय वर्णनात्मक रुचि के प्रबन्धकार हैं। उनका मन वर्णनों में बहुत रमता है, विशेषकर वीररसात्मक प्रसंगों में। इसीलिए उन्होंने इतिहास और

पुराण के उन्हीं प्रसंगों ओर घटनाओं को अपने प्रबन्धकाव्यों का विषय बनाया है, जिनमें उन्हें वीररसात्मक वर्णन के लिए अधिक अवकाश मिल सके। यदि किसी प्रबन्ध-रचना के भीतर वे किसी प्रसंग को अधिक विस्तार नहीं दे सके हैं तो उसके लिए उन्होंने दूसरे खण्डकाव्य की योजना कर डाली है। इसका उदाहरण है उनका *गोरा वध* खण्डकाव्य। उन्होंने *जौहर* में *गोरा वध* प्रसंग का वर्णन किया है, किन्तु उससे उन्हें तृप्ति नहीं मिली। फलतः इस प्रसंग को थोड़ा विस्तार देकर उन्होंने एक खण्डकाव्य रच डाला। कहना चाहिए कि अपने वर्णन-कौशल के आधार पर श्यामनारायण पाण्डेय खण्डकाव्य या महाकाव्य लिखने की पर्याप्त क्षमता रखते हैं, यह दूसरी बात है कि वे महाकाव्य को पूरी तरह महाकाव्य बनाने से चूक जाते हैं। घटनाओं का घात-प्रतिघात दिखाने और जटिल जीवन-स्थितियों के ताने-बाने से प्रबन्ध-कथा को बुनने की कला का परिचय देने में वे अक्सर असफल हो गये हैं।

हल्दीघाटी और *जौहर* श्यामनारायण पाण्डेय की अमर और श्रेष्ठ कृतियाँ हैं, किन्तु महाकाव्यत्व की दृष्टि से *शिवाजी* उनकी सर्वाधिक सफल रचना है। इसमें जीवन का विशद् चित्रण भी है और सामाजिक-राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रसंगों को अपेक्षित महत्त्व के साथ चित्रित भी किया गया है। स्थितियों-मनःस्थितियों के चित्रण में भी कवि ने सूक्ष्मता और संश्लिष्टता पर ध्यान दिया है, जिससे यह सरल-सपाट ढंग का वीररसात्मक काव्य की अपेक्षा व्यापक राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का महाकाव्य बन गया है।

जहाँ तक श्यामनारायण पाण्डेय की भाषा-शैली का प्रश्न है, वह द्विवेदीयुगीन विशेषताओं से युक्त है। वीररस के वर्णन के लिए जिस प्रकार की सहज, प्रवाहमयी और ओजपूर्ण भाषा की आवश्यकता होती है, वह श्यामनारायण पाण्डेय के पास अपनी पूरी क्षमता के साथ मौजूद है। वीरभाव की व्यंजना करते समय वे उपयुक्त शब्द-विधान करने में काफ़ी कुशल हैं—

सुनकर सैनिक तनतना उठे
हाथी हयदल पनपना उठे
हथियारों से भिड़ जाने को
हथियार सभी झनझना उठे ॥

—*हल्दीघाटी*, पृ. 107.

उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ भी है और सहज एवं प्रवाहपूर्ण भी। जब वे वातावरण का वर्णन करते हैं या किसी प्रसंग-विशेष के लिए पृष्ठभूमि तैयार करते हैं तो उनकी भाषा समासयुक्त, तत्समबहुला और अलंकृत हो जाती है। *जय हनुमान* में सामासिक एवं अलंकृत पदावली जगह-जगह देखी जा सकती है—

चन्दन-माला-समलंकृत
कोई रमणी-छवि-रत था
कोई हँसता गाता तो
कोई संगीत निरत था।

परशुराम में परशुराम के बाह्य व्यक्तित्व का परिचय देते समय कवि तत्समबहुला भाषा का प्रयोग करता है–

पावन त्रिपुण्ड से दीप्त भाल
संक्षरित गात से किरण जाल
तप प्रखर तेज से दीप्तिमान
भू अन्तरिक्ष का अन्तराल।

भस्मांकित बल्कल उत्तरीय
बाघम्बर वेष्ठित कटि प्रदेश
गौरव-सा जलता गौर वर्ण
दर्शक आकर्षक रुद्र वेश ॥

भावपूर्ण स्थलों के वर्णन में कवि ने सहज एवं प्रवाहपूर्ण भाषा का व्यवहार किया है। इस दृष्टि से *हल्दीघाटी* और *जौहर* की भाषा उल्लेखनीय है। इन रचनाओं में कवि की भाषा पानी की तरह बहती हुई दिखाई पड़ती है। *हल्दीघाटी* में चेतक की वीरता के वर्णन में कवि की भाषा बड़ी लयात्मक हो गई है। वह इतनी वेगवती है कि पाठक चेतक की वीरता को बड़ी सहजता के साथ आत्मसात् कर लेता है और उसी घोड़े की तरह उसकी भी नस-नस में बिजली दौड़ जाती है। *जय हनुमान* की भाषा में कहीं-कहीं अत्यन्त सहजता है। जब हनुमान ने अशोकवाटिका में उपद्रव मचाया और सभी राक्षस डर कर इधर-उधर भागने लगे, तब इस दृश्य को देखकर रावण बहुत चिन्तित हुआ। उस समय अक्षयकुमार की गर्वोक्ति की प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए बड़ी ही प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग हुआ है–

उस उत्पाती बानर को
बरजोरी आज झटक दूँगा।
पूँछ पकड़कर अभी आपके
सम्मुख यहीं पटक दूँगा।

श्यामनारायण पाण्डेय सम्वादात्मक एवं अभिनयात्मक स्थितियों की सजीव प्रस्तुति में बड़े कुशल हैं। वे उपयुक्त बिम्बों और प्रतीकों से जहाँ वस्तुस्थिति का सम्यक् बोध करा देते हैं, वहीं अपनी भाषा-क्षमता का भी अच्छा परिचय देते हैं।

उनके पास संस्कृत भाषा का शब्द-वैभव तो है ही, देशी शब्दों का भी भण्डार है और ज़रूरत पड़ने पर अरबी-फ़ारसी यहाँ तक कि अंग्रेज़ी के भी शब्द उनकी मदद के लिए खड़े दिखाई पड़ते हैं।

श्यामनारायण पाण्डेय की एक विशेषता यह है कि वे अधिकतर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक जैसे अलंकारों का प्रयोग करके अपनी भावाभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाते हैं और बराबर अर्थोत्कर्ष पर ध्यान टिकाए रखते हैं। अनुप्रास, श्लेष और यमक जैसे अलंकारों का चमत्कार दिखाने में उनकी कोई रुचि नहीं दिखाई पड़ती है। दरअसल उन्होंने काव्य को अभिव्यक्ति-चमत्कार का साधन नहीं माना है, बल्कि उनका उद्देश्य है सोये हुओं को जगाना और राष्ट्रोद्धार के लिए जनता में देशभक्ति और त्याग-बलिदान का भाव भरना। वे वर्णों में 'गरजने' और छन्दों में 'हुँकार' भरने के हिमायती हैं। दुश्मन के लिए उनके शब्द अग्नि-बाण की तरह और देश-भक्त के लिए सिंहनाद की तरह हैं।

छन्द-विधान की दृष्टि से भी श्यामनारायण पाण्डेय का काव्य उल्लेखनीय एवं विचारणीय है। छन्द-प्रयोग में वे काफ़ी कुशल हैं। उनकी छन्द-योजना भावानुकूल है। उन्होंने अधिकतर मात्रिक छन्दों का ही प्रयोग किया है। 'मधुमालती', 'ताटंक', 'सरसी' या 'हरिपद', 'हरिगीतिका', 'विधाता', 'सार', 'मनोरमा', 'चौपाई', 'चौबोला' आदि छन्दों का सफल प्रयोग करके अपनी छन्दज्ञता और छन्द-रचना की प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। उनके छन्द मन्थर गतिवाले भी हैं और चेतक की तरह रण के बीच चौकड़ी भरनेवाले भी हैं। कहीं-कहीं यतिभंग का दोष अवश्य दिखाई पड़ता है। जैसे–

> शिवा समर्थ रामदास के पवित्र पाँव छू।
> खड़े हुए सरोष डग मगा उठी समग्र भू ॥
>
> –*शिवाजी*, पृ. 65.

श्यामनारायण पाण्डेय ने वर्णन-प्रवाह को बनाए रखने के लिए छोटे-छोटे छन्द-दोषों पर ध्यान नहीं दिया है। विद्वानों ने जब उनके *हल्दीघाटी* के कतिपय छन्द-दोषों और भाषिक त्रुटियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया तो उन्होंने साफ़ शब्दों में लिखा–"हाँ, दो-एक स्थलों पर वचन की एकता-अनेकता का ख़याल मैंने इसलिए नहीं किया कि प्रवाह भंग होने का भय था। मैं पहले ही से इस बात की चेष्टा में था कि *हल्दीघाटी* के छन्द निर्झर की तरह अबाध गति से बहते रहें।"

तुकान्त छन्दों के साथ-साथ अतुकान्त अर्थात् मुक्त छन्द के प्रयोग में भी उन्होंने अपनी कुशलता दिखाई है। *शिवाजी* में उन्होंने प्रवाहपूर्ण मुक्त छन्द का कई जगह प्रयोग किया है। उनका मुक्त-छन्द का प्रयोग भी प्रसंगानुकूल है और भाव की सशक्त अभिव्यक्ति करनेवाला भी है–

साथियो, प्रसन्न रहो साहसिक जीवन हो
रुचि हो स्वधर्म में
स्वजाति में स्वराष्ट्र में
रज-राज-ताज के लिए न युद्ध ठाना गया
युद्ध है
स्वधर्म हित
जाति हित
देश हित
आर्य वर्ण-वेश हित।

वैसे तो श्यामनारायण पाण्डेय का समूचा काव्य वीरता की हुँकृति और राष्ट्रीयता के ओजस्वी स्वर से भरा हुआ है, किन्तु रचनाओं के आरम्भ और अन्त में उनकी अध्यात्मचेतना भी अभिव्यक्त हुई है। पौराणिक काव्यों में यह अध्यात्मचेतना स्वाभाविक रूप से व्यक्त हुई है, किन्तु वीररसात्मक ऐतिहासिक कृतियों में यह दार्शनिक परिणति के रूप में विद्यमान है। *हल्दीघाटी* को समाप्त करते हुए कवि दर्शन की गोद में चला जाता है–

हे विश्ववन्द्य, हे करुणाकर
तेरी लीला अद्‌भुत अपार।
मिलती न विजय, यदि राणा को
होता न कहीं तू मददगार ॥

तू क्षिति में पावक में, जल में
नभ में मारुत में वर्तमान।
तू अजपा में, जग की साँसें
कहती सोऽहम् तू है महान ॥

वह यह भी लिख देता है–

इस पुस्तक का अक्षर-अक्षर
प्रभु तेरा ही अभिराम-धाम।
हल्दीघाटी का वर्ण-वर्ण
कह रहा निरन्तर राम-राम ॥

ऐसा लगता है कि इस वीरकाव्य की समाप्ति तक आते-आते कवि की दार्शनिक चेतना प्रबल हो उठी और वह परमशक्ति को देशोद्धार हेतु किसी त्रस्त भक्त की तरह पुकार उठा–

हे राम, हे अभिराम
तू कृतकृत्य कर अवतार से।
दबती निरन्तर जा रही है
मेदनी अघ-भार से ॥

जौहर की समाप्ति पर भी कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है—

इसीलिए है विनय, चाप ले
चरणों में टंकार करो।
जौहर के छन्दों में गरजो
वर्णों में हुँकार भरो ॥

जौहर के आरम्भ में भी कवि ने 'मंगलाचरण' में अपनी दार्शनिकता का परिचय दिया है और ईश्वर के सर्वव्यापी रूप में अपनी गहरी आस्था व्यक्त की है। ऐसा लगता है कि कवि अपने काव्यों में वीर-रस का प्रवाह तो पैदा करता रहा, किन्तु अन्तःसलिला के रूप में उसकी दार्शनिकता भी निरन्तर प्रवहमान रही, इसलिए जैसे ही उसे दार्शनिकता के क्षण मिले, वह उसमें डूब गया। यह दार्शनिकता किसी ख़ास दर्शन और सम्प्रदाय में बँधी हुई नहीं है, वह ऐसी सहजानुभूति है जो जीवन-जगत् के बारे में गहराई से सोचने पर सहज रूप से व्यक्ति में पैदा हो जाती है। कतिपय फुटकल कविताओं में भी कवि ईश्वर की शरण तलाशता हुआ दिखाई पड़ता है—

मद, मोह, लोभ से बँधा हुआ
तृष्णा के घेरे में
अपने घर का रतन
ढूँढ़ता निपट अँधेरे में।

चलते-चलते थक गये पाँव
पर काशी मिली नहीं
अविनाशी की पावन प्रतिमा
मेरी पुकार से हिली नहीं।
निस्सीम गरजना सागर है
कैसे असहाय तरूँ।

कहाँ वीररस के अन्धड़ कवि का अपरिमित रणोत्साह और कहाँ यह भयाक्रान्त असहाय अवस्था। कहना न होगा, स्वदेश, स्वधर्म, स्वजाति और स्वसंस्कृति के अभिमान से भरे इस ओजस्वी कवि ने परमशक्ति के चरणों में अपने

अभिमान को अर्पित करके चित्त-शान्ति तो प्राप्त की है, अध्यात्म-प्रधान भारतीय संस्कृति के प्रति अपना आन्तरिक राग भी व्यंजित किया है—

अधर-अधर मुस्काता जो है
कवि के स्वर में गाता जो है
दाता जो है, भाता जो है
माता-पिता, विधाता जो है।

उसी देवता के चरणों में कवि के मस्तक का अभिमान॥

●

श्यामनारायण पाण्डेय की रचनाएँ :

1. *माधव* और *रिमझिम* (प्रारम्भिक कविताओं के लघु-संग्रह, सम्प्रति अप्राप्त)
2. *त्रेता के दो वीर* (बाद में *तुमुल* नाम से प्रकाशित—1928 ई.)
3. *हल्दीघाटी* (1939 ई.)
4. *जौहर* (1944 ई.)
5. *आरती* (फुटकल कविताओं का संग्रह—1946 ई.)
6. *जय हनुमान* (1956 ई.)
7. *गोरावध* (1956 ई.)
8. *शिवाजी* (1970 ई.)
9. *बालिवध* (1975 ई.)
10. *वशिष्ठ* (1975 ई.)
11. *परशुराम* (1985 ई.)
12. *रूपान्तर* (*कुमारसम्भव* का पद्यानुवाद—1948 ई.)
13. *आधुनिक कवि*—17 (प्रतिनिधि काव्य संकलन—1978 ई.)

पुरस्कार :

देव पुरस्कार (*हल्दीघाटी* पर)
द्विवेदी पुरस्कार (*जौहर* पर)
उ. प्र. सरकार का पुरस्कार (*जय हनुमान* और *शिवाजी* पर)

अभिनन्दन :

— हरिऔध कलाभवन, आज़मगढ़ द्वारा 'रजत खड्ग' समर्पित करके अभिनन्दन (1974 ई.)
— हिन्दी साहित्य प्रकाशन, आज़मगढ़ द्वारा अभिनन्दन (1978 ई.)